# साहित्य का प्रयोजन

साहित्य क्यों? किसके लिए? साहित्य से किसको और कैसे लाभ होता है? अर्थात जीवन या समाज में साहित्य की क्या भूमिका है फिर साहित्य से हमेशा लाभ ही होता है? या नुकसान होने की भी संभावना रहती है? ऐसा ही न जाने कितने सवाल सदियों से साहित्य के लिए उठते रहे हैं। साथ ही साथ साहित्य से जुड़े इन सब आदिम सवालों के जवाब की तलाश भी जारी है। जैसा कि जब से साहित्य रची गयी हैं तभी से लगभग सवाल वही हैं साहित्य का प्रयोजन क्या है? प्रश्न के जैसा ही जवाब भी कम पेचीदा नहीं है, मतलब इस प्रश्न का उत्तर हमेशा एक जैसा नहीं है। समय के हिसाब से भिन्न-भिन्न जवाब दिया गया है और दिए जा रहे हैं। अथवा एक ही समय में कई प्रकार से इसका जवाब दिया जाता है, जा रहा हैं। अवश्य इसके पीछे कारण भी रहा है। जैसे दिन-ब-दिन साहित्य का स्वरूप,परिभाषा और दायरा बदल जाता है उसी हिसाब से साहित्य की प्रयोजनीयता का सवाल भी और उलझनपूर्ण और पेचीदा हो जाता है। जाहिर है साहित्य के इन सनातन-आदिम प्रश्नों से हमेशा साहित्य के बड़े-बड़े लेखक-बुद्धिजीवि टकराते-उलझते रहे हैं। कुल मिलाकर यह स्पस्ट है कि इस दुनिया में यों तो कुछ भी अकारण नहीं है, जो कुछ भी हो रहा है, घट रही हैं उसके पीछे कोई न कोई कारण अवश्य रहा है। तो साहित्य भला कैसे निष्कारण हो सकता है। साहित्य के पीछे भी कुछ न कुछ कारण जरुर रहा है। अर्थात कहीं न कहीं कुछ न कुछ  प्रयोजन अनुभव किया जाता है और तभी साहित्य का सृजन सम्भव होता है।

स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी साहित्य इतिहास में सशक्त कवि-आलोचक और मशहूर संस्कृतिकर्मी अशोक वाजपेयी भी भला इस सवाल से कैसे अछूता रह सकता है? वे भी इस सवाल से बेधड़क टकराते-उलझते और यहा तक कहना भी अत्युक्ति

नहीं होगा कि अशोक वाजपेयीजी इस सवाल को लेकर कभी–कभार लड़ते भी रहे हैं। क्योंकि अशोक वाजपेयी के लिए 'साहित्य' शब्द का अर्थ ही कुछ अलग और निर्णायक महत्व का रहा है। और ऐसा तो होना ही है कारण हर महत्वपूर्ण लेखक की अपनी एक अन्तर्निहित सत्ता–दृष्टि होती है। इस प्रसंग में मदन सोनीजी का कथन द्रष्टव्य है। वे कहते हैं — 'अशोक वाजपेयी के लेखन मे 'साहित्य' का अर्थ भिन्न और निर्णायक महत्व का है। हर महत्वपूर्ण लेखक की अपनी एक अन्तर्निहित सत्ता–दृष्टि होती है, जो उसके भीतर किसी न किसी स्तर पर अस्तित्व की शर्तो को समझने, परिभाषित, प्रस्तावित, परिस्कृत करने या बदल देने में व्यक्त होती है।' [1] साहित्य से उनका ताल्लुक अलग किस्म का है यहाँ तक कि कवि अशोक वाजपेयी के लिए साहित्य बहुत हद तक साक्षात स्वतन्त्र जीवन–प्रविधि है कहते है सुधीश पचौड़ीजी — 'उनकी अवधारणाओं से आप सहमत हो या असहमत हो, साहित्य से उनका ताल्लुक अलग किस्म का है यह रिश्ता शुरू से है। साहित्य बहुत हद तक उनके लिए साक्षात स्वतन्त्र जीवन–प्रविधि है।' [2] साहित्य से उनकी उम्मीद है, और उम्मीद की बात वे करते हैं। अपनी हिम्मत चाहत सबकुछ दाँव पर लगाकर भी कवि अशोक वाजपेयी अपनी हाड़ी होड़ लगाए हैं। 'एक खिड़की' शीर्षक कविता में वे यही कहते हैं। समाज की वर्तमान परिस्थिति में लगभग सारी व्यवस्थाए टूट चुके हैं, सभी रास्ते बन्द हो गये हैं। कहीं भी रोशनी नजर नहीं आ रही है। इस परिस्थिति में हम कम से–कम कविता या साहित्य से उम्मीद कर सकते हैं और करना ही चाहिए। अवश्य दूसरे करें या न करें उनको पूरा भरोसा हैं —

**'हम अपने समय की हाड़ी होड़ लगाएँ हैं**
**और दाँव पर दें**
**अपनी हिम्मत चाहत सबकुछ –**
**पर एक खिड़की तो खुली रखना चाहिए।'** [3]

कवि–आलोचक अशोक वाजपेयी अच्छी तरह जानते हैं जिस रास्ते पर वे हैं लगभग अकेले आदमी हैं क्योंकि वे स्वंय उस रास्ते गये ही नहीं जिस रास्ते से होकर चलते हैं देवताए और योद्धा। कवि को देवताओं से कोई उम्मीद नहीं हैं अर्थात देवताओं से विरत, फिर योद्धाओं पर उनको आस्था है ही नहीं, तो उनसे भी उदासीन। कवि अशोक वाजपेयी को पूर्ण आस्था और उम्मीद साहित्य पर है। कोई माने या न माने कवि इसे पवित्र लड़ाई समझते हैं और वह लड़ाई अब भी जारी है। लड़ाई शीर्षक कविता की पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'देवताओं से विरत**
**और योद्धाओं से उदासीन**
**वह आदमी लड़ता है**
**एक पवित्र लड़ाई'** [4]

कवि अशोक वाजपेयी का मानना है दुनिया के अन्य चीजों के जैसा साहित्य भी निरर्थक या उद्देश्यहीन नहीं है। अशोक वाजपेयी कहते हैं— 'साहित्य जीवन, मनुष्य, संसार भाषा आदि को देखने–समझने विन्यस्त करने की स्वतन्त्र दृष्टि है।' [5] साहित्य व कलाओं में मूलत : मानव अस्तित्व का अवलोकन किया जाता है, मनुष्य के अस्तित्व पर दृष्टिपात करते हैं। जैसा कि कवि अशोक वाजपेयी का कहना हैं — 'साहित्य व कलाएँ अपने आप में मानव के अस्तित्व पर दृष्टिपात है, दृष्टि का उपनिवेश नहीं।' [6] साहित्य मनुष्य द्वारा चरम सृष्टि है। मनुष्य सामाजिक प्राणी हैं, उसमें चेतना का समावेश है। मनुष्य में भावाभिव्यक्ति तथा बोधगम्यता की अपूर्व शक्ति हैं। विचारों को भाषा देने म इसे सफलता प्राप्त है। अपनी सामाजिकता को स्थायित्व प्रदान करने के लिए मनुष्य अनेक शास्त्रों का निर्माण किया हैं। आनन्द की अनुभूति मनुष्य में विकसित हुई हैं। मनुष्य समाज की भाव एंव मनोवृत्तियाँ जिस व्यवस्थित कलात्मक भाषा में व्यक्त की है वह अक्षर ह और उसके संकलित रूप

को ही साहित्य का नाम दिया गया है। अतः मनुष्य की चिन्तनशील प्रवृत्ति का परिणाम ही साहित्य के रूप में विकसित होता है। यह चिन्तन भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही होता हैं। तो स्पष्ट है साहित्य मानव जीवन से जुड़ा है। मानवीयता से जुड़ा हुआ है। कवि अशोक वाजपेयी मनुष्य और मानवीय-सच्चाई को वर्तमान जटिल और खून खराबे के माहौल में साहित्य के माध्यम से बचाके रखना चाहते हैं। दूसरी भाषा में कहें तो अशोक वाजपेयी के अनुसार विभिन्न दृष्टियों से इस पतनशील समाज में सच्ची अर्थ में मानवीय प्रमूल्यबोध थोड़ा-बहुत साहित्य ही बचाके रखा है। कवि अशोक वाजपेयी की भाषा में —'पहले तो लेखक का काम है कि आग और विध्वंस के बीच, धुएँ और खून खराबे के माहौल में भी अपनी आखों से मानवीय सच्चाई और उसकी जटिल और अनगिनत परतों को ओझल न होने दे। दूसरा यह कि ऐसे समय में साहित्य को सच की पनाहगार होना चाहिए: आतंक के बरक्स बिरादरी, परस्पर समझ और सहकार, प्रेम और लगाव, प्रतिरोध और प्रश्नांकन के मूल्य और प्रवृत्तियों का शरण्य। तीसरा यह कि आतंक के दौर में एक तरह का ध्रुवीकरण भले अनिवार्य हो जाता हो, वह होता स्थिति का सरलीकरण ही है, इसलिए लेखक को दूसरे पक्ष को समझने समझाने की, गलत समझे जाने का जोखिम उठाते हुए भी कोशिश कभी नहीं छोड़ना चाहिए। चौथा यह कि साहित्य मनुष्य का और उसकी दुनिया का मैला आँचल हैं : उसमें सबकुछ स्याह-सफेद में ठीक-ठीक नहीं बाँटा जा सकता। एक तरह की नैतिक दुविधा साहित्य की असली शक्ति है, उसे आतंक में भी नहीं छोड़ना चाहिए।' [7] आगे और कहते हैं — 'साहित्य की उपयोगिता बहुत कुछ इसपर निर्भर करती हैं कि वह हमें कितनी बड़ी जीवन दृष्टि दे पाता है : हमारे समय को कितने विविध, जानदार और मौलिक तरीकों से हमारे लिए सोच-समझ पाता है।' [8] कवि अशोक वाजपेयी की एक कविता है 'टुटे बिखरे का स्थापत्य' शीर्षक से है जहाँ इन विचारों का लेखा-

जोखा स्पष्ट देखा जा सकता है कि जीवन में जीने की प्रक्रिया में शब्द किस तरह से हमें रास्ता दिखाते है और सम्भलते है बिखरने से —

**'जीने के हिज्जे सुधारते हैं शब्द**
**सबकुछ राख हो जाने के बाद भी रह जाते हैं**
**अस्थियों की तरह शब्द**
**हम छीझते हैं चुकते हैं और बीतते हैं**
**आत्मा का जोर्णोद्धार करते है शब्द।**
**सपना हो या सच**
**पूरा होता है शब्द में**
**टूटता-बिखरता है जीवन में।'** [9]

कवि आलोचक अशोक वाजपेयी का यहा तक मानना है कि दरअसल शब्द (साहित्य) अपने आपमें कुछ नहीं मगर इसके बिना संसार सम्भव नहीं है। पृथ्वि हो सकता है क्योंकि इसे प्रकृति ने रचा है। किन्तु उसे संसार में रूपान्तरित भाषा ने किया है, साहित्य ने किया है। उनकी भाषा में शब्द अपने आप में कुछ नहीं है लेकिन शब्द के बिना संसार सम्भव नहीं है। पृथ्वि तो हो सकता है कि विधाता न या प्रकृति ने रची हो लेकिन उसे संसार में रूपान्तरित भाषा ने किया हैं। साहित्य हमारे अर्न्तनेत्र को खोलती हैं। सच तो यह है मनुष्य को सही अर्थ में मनुष्य बनाने में साहित्य की भूमिका काफी दिलचस्प है। इसी प्रसंग में कवि अशोक वाजपेयी के विचार से विनय विश्वासजी पूर्णत: सहमत है। कविता के प्रसंग में वे जो कहते हैं यहाँ उल्लेख किया जा सकता है — 'कविता मनुष्यता की संवेदनालय है। अमानुषीकरण की प्रक्रिया में सर्जनात्मक हस्तक्षेप है। वह मनुष्य का विवेक जगाती है। जगाए रखती है। जागरूकता बढ़ाती है। वह जाग्रत विवेक के कारण ही मनुष्य परिस्थितियों का खिलौना बनने से बच पाता है। हर हाल में मनुष्यता को सर्वोच्च

रख पाता है। वही मनुष्यता : जिसकी पहचान है — दूसरों के दुख में दुख अनुभव करना। जितना हो सके, उसे दूर करना। दूसरों को इस्तेमाल करने की जगह उनके काम आना। लोभ के जगह प्रेम को चुनना। छल के नहीं; सच के साथ रहना। भोग का गुलाम होना नहीं; भोग पर अधिकार प्राप्त करना।' [10] रोजमर्रा की भागदौड़ की जिन्दगी में हम अपने से कभी सवाल नहीं करते है या मौका ही कम मिलता है ऐसा करने के लिए। मगर साहित्य या कविता हमें ऐसा सवाल पूँछने के लिए कभी कभार मजबूर करते हैं और हम ऐसा करते हैं। कवि अशोक वाजपेयी को ऐसा लगता है कि ऐसा करके ही साहित्य के माध्यम से बढ़ते हुए अंधेरे के खिलाफ एक छोटी सी लौ जला रखा जा सकता है। देखिए उनकी 'कैसे और किससे' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों में —

**'जानते हुए भी कि भागदौड़ की अब उमर नहीं रही**
**अभी ऐसे भागता हूँ कि मेरे न पहुँचने से**
**कुछ होने से रोक जायगा**
**या कुछ ऐसी रौशनी मिल जाएगी कि**
**बढ़ते हुए अँधेरे के खिलाफ एक छोटी सी लौ**
**इस ठण्ड में भी जला रख सकूँगा।'** [11]

जैसा कि कहा जाता है कि कोई भी साहित्य या रचना पढ़ने के बाद हम वही मनुष्य नहीं होते जो उसे पढ़ने के पहले होते ह। कवि अशोक वाजपेयी को इतना जरुर विश्वास है कि साहित्य या कविता दूसरों की दुनिया को बदल सके या नहीं लेकिन स्वंय कवि की दुनिया को जरुर बदलते हैं। उनकी कविता 'अगर वक्त मिला होता' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ —

**'अगर वक्त मिला होता**
**तो मैं दुनिया को बदलने की कोशिश करता।**

**आपकी दुनिया को नहीं,**

**अपनी दुनिया को,**

**जिसको संभालने-समझने**

**और बिखरने से बचाने में ही वक्त बीत गया।'** [12]

दरअसल कविता या साहित्य मूलत: कवि ही नहीं 'मनुष्य की दुनिया को बदलता है। इस तरह से पवित्रता की खोज वे ईश्वर या धार्मिक स्थलों के बजाए वे संम्बधों और चीजों की रोजमर्रा की दुनिया में करते हैं। क्योंकि 'शब्द' उनके लिए ईश्वर है, परम सच है। उनकी भाषा म — 'अक्सर मैंने यह पवित्रता बजाय ईश्वर और धार्मिक स्थलों के, सम्बन्धों और चीजों की रोजमर्रा की दुनिया में अवस्थित करने की कोशिश की है। यों तो भारतीय दर्शन में शब्द को ब्रह्म माना गया है, पर मेरे लिए शब्द एक परम सच है। शब्द से देह ही नहीं सारा संसार बल्कि समूचा अस्तित्व जागता है, सम्भव होता है। शब्द ईश्वर-प्रदत्त नहीं है — वह प्राकृतिक भी नहीं है वह मनुष्य का आविष्कार है। शब्द ही कवि का ईश्वर है। उससे अलग ईश्वर की दरकार नहीं। जो कवि शब्द को नहीं साधता वह जीवन को नहीं साध सकता। शब्द पर आस्था जीवन पर आस्था का ही रूप है।' [13]

साहित्य की निगाह ऐसी निगाह है जो कहीं भी पहुँचती हैं। जैसा कि माना जाता है जहाँ सूरज नहीं पहुँच पाता, वहाँ कवि पहुँचता है। कुछ ऐसा ही विचार व्यक्त करते हैं कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविता 'वहा भी' में। कुछ पंक्तियाँ-

**'हम वहाँ भी जाएँगे**

**जहाँ हम कभी नहीं जाएँगे**

**अपनी आखिरी उड़ान भरने से पहले,**

**नीम की डाली पर बैठी चिड़िया के पास,**

**आकाशगंगा में आवारागर्दी करते किसी नक्षत्र के साथ,**

**अज्ञात बोली में उचारे गए मंत्र की छाया में**

**हम जाएँगे**

**स्वंय नहीं**

**तो इन्हीं शब्दों से.........'** [14]

शायद इसलिए भी कवि अशोक वाजपेयी पवित्रता की खोज और रहस्य का पुनर्वास साहित्य के सरोकार के रुप में स्वीकारते हैं।

साहित्य के प्रयोजन के सम्बध में यह सर्वविदित है कि सदियों से चले आ रहे इस मुद्दे या विवाद में एक वर्ग ऐसा भी रहा है जो हमेशा उपयोगिता की दृष्टि से साहित्य का मूल्यांकन करते हैं। विशेषत : उस कला या साहित्य को जिसमें केवल कल्पना और अनुभूति और सौन्दर्य और प्रेम का ही रंग होता हैं, उपयोगितावादी अलोचक हेय एंव त्याज्य समझते है। उन लोगों का मानना हैं कि इस प्रकार की साहित्य न तो पाठक के ज्ञान में विशेष अभिवृद्धि कर पाती है और न ही उसके जीवन की किसी विशेष समस्या का समाधान दे पाती है। ऐसे अनेक आरोप-प्रत्यारोप अशोक वाजपेयी के साहित्य विशेषत : उनकी कविताओं को लेकर उठाये गये है या उठते रहते हैं। और कहा जाता है कि उनकी कविता उपयोगितावादी दृष्टि से प्राय: महत्वशून्य है। पर एक सजग और चौकन्ना कवि अशोक वाजपेयी का विचार कुछ और है, क्योंकि साहित्य  के क्षेत्र में किसी भी दायरा या पगडण्डी का अस्वीकार ही नहीं वेधड़क तिरष्कार करते हुए कवि का मानना है साहित्य का सिर्फ एक या दो प्रयोजन अथवा उद्देश्य हो ही नहीं सकता। और कोई भी साहित्य, कोई भी काव्य कभी भी निष्फल या महत्वशून्य नहीं हो सकता है। अत: अपने मत की पुष्टि अशोक वाजपेयी अपनी आलोचनाओं में यहाँतक कि अपनी कविताओं में भी जब-तब स्पष्ट और आक्रामक रूप में करते हुए दिखाई देते हैं। कवि अशोक वाजपेयी को अधिकतर कलावादी कहकर तिरष्कृत-खारिज किया जा रहा था। यह

और बात है कि आजकल दृश्य में कुछ हद तक बदलाव आ चुकी हैं। लोग सच्चाई को समझ चुके है और सराह भी रहे हैं। जो मानवीय अनुपस्थिति की बात कहकर अशोक वाजपेयी और उनकी कविताओं का तिरष्कार किया जाता रहा है वह सही नहीं है। इस प्रसंग में यहा पुरूषोत्तम अग्रवालजी का कथन द्रष्टव्य है — 'अशोकजी की कविताओं के सरोकार और पाठक पर पड़ने वाले उनके सम्भावित प्रभाव दोनों ही मानवीय उपस्थिति के हैं। इसके अलवा मानवीय आक्रान्तता के विरोद्ध होना भी अपने आप में मानवीय उपस्थिति का एक प्रमाण है।' [15]। सच्चाई तो यह है, कवि अशोक वाजपेयी 'कला को कला के लिए' सिद्धान्त पर भरोसा ही नहीं करते हैं वे कहते हैं —'कला को कला के लिए' सिद्धान्त में मैं भरोसा नहीं करता हूँ। मैंने कभो इसका प्रतिपादन भी नहीं किया। हालाँकि मैं ये जानता हूँ कि ऐसी बहुत सारी कला और बहुत महत्वपूर्ण श्रेष्ठ कला सम्भव नहीं हुई हैं जो किसी बृहत्तर प्रयोजन के लिए नहीं रची गई थी। शुद्ध स्वान्तः सुखाय थी; लेकिन मैं स्वयं ऐसा कला का प्रयोक्ता नहों हूँ। मुझे लगता है कि जो जीवनदर्शी कलाएँ हैं, उनके स्तर बहुत हैं। सिर्फ एक तरह के या मोटे-मोटे ढंग को जीवन मानना और सूक्ष्मताओं, बारीकियों, जटिलताओं को अमूर्तन कहके नजरअन्दाज करना या लांछित करना बहुत ही हास्यास्पद है। यह बौद्धिक दृष्टि से भी हास्यास्पद है और सर्जनात्मक दृष्टि से तो बिल्कुल ही इनडिफेंसेबुल है।' [16] हालाँकि कवि अशोक वाजपेयी का जो बहुत बड़ा काव्य-संसार है उसमें से अगर गुजरा जाए तो उनमें ढेर सारी कविताएँ ऐसे भी है जो तथाकथित उपयोगिता वादी दृष्टि से सौ प्रतिशत अंक के साथ पास हो जाते है और कवि अशोक वाजपेयी बल देते हैं और वे मानते हैं कि जीवन जिस तरह से बहुत बड़ा बहुत कुछ का सम्मिश्रण है तो उसको देखने-परखने और बखानने की दृष्टि भी एक नहीं अनेक हैं। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है कवि अशोक वाजपेयी कहते हैं शब्द यानी साहित्य हमारे

अन्तकरण पर भारहीन गिरते हैं मुश्किल वक्त में हमें राह दिखाते हैं, गिरने से बचाते हैं। जब कभी भी हम गलत रास्ते पर होते हैं तो वह हमें जतला देते ह कि रास्ता और भी हैं —

**'शब्द गिरने से बचाते हैं,**
**वे भारहीन गिरते हैं**
**अन्तकरण पर।**
**कभी कभी जब हम गलत रास्ते पर होते हैं**
**शब्द जूतों के अन्दर अचानक उभर आई**
**कील की तरह गड़ते हैं; वे हमें रोक न सकें**
**पर इतना जतला जरूर देते हैं**
**कि हम किसी और रास्ते भी जा सकते हैं।'** [17]

कवि अशोक वाजपेयी के लिए 'साहित्य' शब्द ही कुछ और है जैसा कि ऊपर भी उल्लेख किया गया है। उनके द्वारा दी गयी साहित्य की परिभाषा और स्वरूप को अगर गौर से देखा जाय, समझा जाय तो अशोक वाजपेयी के साहित्य का क्या-क्या प्रयोजन है उसे आसानी से समझा जा सकता है। अशोक वाजपेयी के लिए साहित्य मनुष्य का एकमात्र शाश्वत प्रजातन्त्र है, जहाँ हरेक व्यक्ति के लिए जगह है छोटी से छोटी आवाज के लिए भी जगह होती हैं। जिस आवाज या प्रार्थना को कोई नहीं सुनता है। उस इतिहास को जो बनते-बनते बिगड़ गया अथवा उस अनकही बात को किसी भी कारण से बताया ही नहीं गया। इन सबको कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविता के माध्यम से सुनते हैं, सोचते है और दूसरों तक पहुँचाने की कोशिश करते ह 'आवाज देता हूँ' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'जिसे कोई नहीं सुनता**
**उस प्रार्थना को,**
**जो अधूरी**
**उस प्राचीन कविता को,**
**प्रेम में न तोड़ी गयी चुप्पी को**
**इस कविता की बीहड़ से**
**आवाज देता हूँ।'** [18]

इसी आवाज को और ब्लन्द करते हुए कवि-आलोचक अशोक वाजपेयी 'शताब्दी के अन्त के कगार पर' के अन्तर्गत 'कवि' शीर्षक कविता के माध्यम से उन लोगों के लिए भी संवेदना तथा उम्मीद की खिड़की खोलके रखते हैं जो भिड़-भड़क्के और चका-चौंध में दिखाई नहीं देते हैं। वे लोग जो इतिहास के चिकने-चुपड़े भवन से भी बाहर हैं —

**'चकाचौंध और चौक के हाशिए पर**
**इतिहास के चिकने-चुपड़े भवन से बाहर**
**वे जो कुछ लोग खड़े हैं**
**मुझ कवि के साथ अपनी-अपनी जगह पर**
**मैं उन पर सिर्फ एक खिड़की खोलता हूँ।'** [19]

स्पष्ट भाषा में कवि अशोक वाजपेयी कहते हैं कि उन छोटे-छोटे सचों में ही हमारी मानवीयता रसी-वसी है। जिसको अगर बचाया जाए तो वह हमें जीने की प्रक्रिया में जरुर मदद कर सकती हैं। उनकी भाषा में — 'मुझे लगा कि कविता का एक काम उन छोट सचों को सहेजना और जगह देना है जिनमें हमारी मानवीयता रसी-बसी और अभिव्यक्त-विन्यस्त होती हैं। कविता अगर जीने की हमारी प्रक्रिया

में कुछ सहायता देना चाहे तो वह इसी तरह के छोटे सचों को हमारे लिए बचाकर कर सकती है। कम से कम उस ऐसी चेष्टा अवश्य करना चाहिए।'[20]

उदाहरणार्थ उनकी एक कविता जिसका शीर्षक है 'पेड़ के पीछे आदमी' उस कविता से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'मुझे लगता है**
**पेड़ के पीछे एक आदमी है**
**जो तोते के अधखाएँ फल के गिरने पर**
**उसे बीनकर ले जाता है**
**जो मानता है कि**
**किसी छोटे से सच को भी**
**खराब नहीं जाना चाहिए।'**[21]

पेड़ के पीछे जो आदमी है वह स्वंय कवि हैं और अधखाए फल तथाकथित सामाजिक सच्चाइयों से अलग, जो आमतौर पर दूसरों के द्वारा नजरअन्दाज किया जाता है वह 'सच' जिसे कवि अशोक वाजपेयी बीनकर ले जाते हैं। कवि के लिए इन छोटे-छोटे सच का भी महत्व है, जो खराब नहीं होना चाहिए।

साहित्य की सामग्री कहीं और से लिया नहीं जाता है वह व्यक्ति और समाज, सम्बंधों और भाषा, अनुभव, विचार और संवेदना के रासायनिक संयोग से अर्जित करता है। इसके अलवा साहित्य मानवीय स्थिति, अस्तित्व, समाज, व्यक्ति आदि को देखने और समझने,विन्यस्त और बदलने की वैचारिक दृष्टि भी हैं। कवि अ.वा. इस प्रसंग में अपनी राय कुछ यों व्यक्त करते हैं — 'मैं मानता हूँ कि साहित्य मनुष्य का एकमात्र शाश्वत प्रजातन्त्र हैं। जिसमें छोटी से छोटी आवाज और व्यक्यि के लिए जगह होती हैं। साहित्य की स्वायत्वता पर आग्रह उसके सच की अद्वितीयता पर आग्रह है; अपना यह अनोखा सच साहित्य व्यक्ति और समाज,

सम्बधों और भाषा, अनुभव, विचार और संवेदना के रासायनिक संयोग से अर्जित करता है। मेरा इसरार साहित्य के सच को सामाजिक सच या राजनीतिक सचाइयों से निरपेक्ष मानन बनाने का कभी नहीं रहा है। मैं साहित्य को किसी अन्य विचार या विचारधारा के उपनिवेश बनाए जाने का विरोध करता हूँ। मैं कई बार कह चुका हूँ कि मेरी नजर से साहित्य के लिए एक भरा–पूरा स्पन्दित समाज चाहिए पर साहित्य की रचना व्यक्ति करते हैं समाज नहीं। दूसरे मुझे लगता रहा है कि धर्मविज्ञान, राजनीति, विचारधाराएँ आदि अनुशासन साहित्य की वैचारिक सत्ता आसानी से स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं, जबकि साहित्य, अनुशासनों की तरह, मानवीय स्थिति, अस्तित्व, समाज, व्यक्ति आदि को देखने और समझने, विन्यस्त और बदलने की वैचारिक दृष्टि भी है। जाहिर है कि यह दृष्टि किसी सामाजिक या आध्यात्मिक शून्य में विकसित नहीं होती: वह तो सबके बीचोबीच लहूलुहान, धूल और कीचड़ में लिथड़ी सचाई से ही विन्यस्त होती हैं।[22]

कवि अशोक वाजपेयी के अनुसार साहित्य या कविता बनती है जीवन के बोझ से जिसमें भरे होते हैं जमाने का अंगर–खंगर। 'बोझ से कविता' शीर्षक कविता में कवि का कहना हैं —

**'हम अपनी अन्धेर**
**और जल्दी ही कुछ झुक जानेवाली पीठ पर**
**लादे चल रहे हैं एक बेताले की सदूंक**
**जमाने की अंगर–खंगर भरे हुए**
**अब जब सुस्ताने बैठे**
**इस बोझ के बारे में सोच रहे हैं**
**तो लग रहा है**
**कि कविता कर रहे हैं।**[23]

साहित्य ही हमें सिखाता है कि अपने समय में जिया कैसे जाता है साथ ही जीवन व्यापार की जटिल और पेचीदा गुत्थियों को किस तरह सुलझाया जाता है। फिर देखा जाय तो सही अर्थ में असली मनुष्यता की अभिव्यक्ति भाषा के बिना सम्भव ही नहीं हैं। कवि अशोक वाजपेयी का भी मानना है — 'साहित्य ही है जिससे हम जान पाते हैं कि किसी भी समय में जिया कैसे जाता है, और कि जिसे हम जीवन–व्यापार कहते हैं वह कितना जटिल मामला है और कि जीवन किसी एक स्तर तक महदूद नहीं और भी कि हमारी असली मनुष्यता भाषा के बिना कभी पूरी या व्यक्त नहीं हो सकती फिर यह भी कि भाषा में जिजीविषा का ही द्सरा नाम साहित्य है। जिसकी बिलकुल अलग आवाज है। जिसे हम अक्सर अनसुनी करते हैं।' [24] कवि अशोक वाजपेयी अपनी 'खाली हाथ' शीर्षक कविता में कुछ यों कहते हैं —'दुनिया को बदलने के लिए, कुछ और बेहतर बनाने के लिए और अपने समय में जिन्दगी को ढंग से जीने के लिए, चलाने के लिए जिसकी जरुरत है वह और कुछ नहीं कविता ही है —

**'उनकी तरह**
**मेरे पास दुनिया को बदलने का**
**कोई विकराल सपना नहीं था;**
**मैं इस टुच्ची आकांक्षा में फँसा रह गया**
**कि कुछ रूपक, कुछ शब्द, कुछ विन्यास बदलने से**
**वह सब इतना बदल जाएगा,**
**जो जितना जिन्दगी को ठीक ठीक चलाने के**
**हमारे युग में जरुरी हैं।'** [25]

इस प्रंसग में कवि अशोक वाजपेयी की एक महत्वपूर्ण कविता है 'अपने साढ़े छः महिने के पोते के लिए एक युद्ध गीत।' प्रस्तुत कविता में कवि सिर्फ अपने

नन्हें पोते को नहीं, सबको यानी सारे मनुष्य को यह सन्देश देते हैं कि जमाना चाहे जैसा भी क्यों न हो, लोग चाहे कितना भी नीचे गिर गये हो फिर भी हम सुन्दर और पवित्र की ओर लौटने की प्रार्थना कर ही सकते हैं। कवि चाहते हैं इस निश्छल प्रार्थना में सभी उनका साथ दे। और यह प्रार्थना और कुछ और नहीं कविता ही है-

**'सब कह रहे हैं सयाने और जिम्मेदार कि अब**
**मारने और मरने के अलवा किसी और के लिए समय नहीं रह गया हैं।**
**फिर भी मैं एक अधेड़ कवि,**
**बिना थके हारे और बिना किसी कायर उल्लास में शामिल हुए,**
**जानता हूँ कि अभी भी न सिर्फ तेरे लिए**
**और दुनिया के तमाम बच्चों के लिए**
**बल्कि सबके लिए, सुन्दर और पवित्र को बचाने के लिए**
**प्रार्थना में हाथ उठाने और सिर झुकाने का समय है —**
**प्रार्थना भी एक लड़ाई है**
**निश्छल सपनों और कीचड़-खून सने सच के बीच**
**उस जगह को बचाने की**
**जहाँ से हम सुन्दर और पवित्र की ओर लौट सकते हैं।'** [26]

समाज के एक सजग और सचेतन व्यक्ति के अलवा एक संवेदनशील कवि होने के नाते समाज के वर्तमान परिस्थिति से पूरी तरह कवि अशोक वाजपेयी वाकिफहाल है। और यह भी जानते हैं कि इस क्षयग्रस्त समाज को प्रकृतार्थ में सुन्दर और पवित्र बनाने में जहरीली हथियार से कविता यानी साहित्य ही अधिक कारगर सिद्ध हो सकता है। 'प्रार्थना-पाँच' शीर्षक से कवि अशोक वाजपेयी की एक और महत्वपूर्ण कविता है जहाँ भी कवि बच्चों की हँसी जैसी खिल-खिलाहट, बहते निर्झर स्वच्छ और निर्लक्ष्य प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना किसी चीज के लिए नहीं,

वह यह कि प्रेमहीन संसार में जहाँ संघर्ष ही संघर्ष है। हरदम हरेक आदमी हर कहीं सुन्दरता को नष्ट करने के लिए उतावला रहता है उसका प्रतिरोध करने के लिए —

**'क्या मैं ऐसी प्रार्थना कर सकता हूँ**
**जो बच्चों की हँसी जैसी खिलखिलाहट हो**
**सुदूर वन प्रान्तर में बहते निर्झर की तरह**
**स्वच्छ और निर्लक्ष्य हो**
**जो फिर भी किसी और जगह नहीं**
**इसी संसार में प्रेम और सुन्दरता को नष्ट करते**
**समय का प्रतिरोध हो ?'** [27]

इस तरह का विचार का खुलासा करते हुए कवि अशोक वाजपेयी स्पष्ट भाषा में गुहार लगाते है कि कविता (साहित्य) सिर्फ मनोरंजन नहीं है और उसे किसी भी हालत में बन्द कर देना नहीं चाहिए। फिर मनुष्य और मानवीयता के विरुद्ध और विनाश और विध्वंस के विरुद्ध कविता या साहित्य में ही आवाज उठाना चाहिए। देखिए उनकी भाषा में— 'कविता (साहित्य) मनोरंजन नहीं है जिसे किसी भयानक ट्रेजडी के कारण स्थगित कर देना चाहिए। कविता को मनुष्य, सृजन और उसकी जिजीविषा के पक्ष में और विनाश और विध्वंस के विरुद्ध आवाज उठाना चाहिए।' [28] कुछ ऐसा की विचार उनकी कविता 'स्थगित नहीं होगा शब्द' में दैखा जा सकता है कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'स्थगित नहीं होगा शब्द**
**घुप्प अंधेरे में**
**चकाचौंध में**
**बेतहशा बारिश में**
**चलता रहेगा**

**प्रेम की तरह**

**प्राचीन मन्दिर में**

**सदियों पहले की व्याप्त प्रार्थना की तरह।'** [29]

कवि अशोक वाजपेयी को अभी भी शत–प्रतिशत उम्मीद हैं कि इस पृथ्वि को, मनुष्य को नश्वरता से 'शब्द' अर्थात साहित्य ही बचा सकते हैं उदाहरण के रूप उनकी कविता 'ईश्वर' शीर्षक करे कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

**'थिगड़े लगे आकाश को पहने**

**नक्षत्रों के सूने गलियारों में**

**पृथ्वी को भजते हुए**

**वह एक बुढ़ा कवि है  अभी भी इस आशा में**

**कि नश्वरता से बचा सकते हैं**

**शब्द।'** [30]

दरअसल कवि अशोक वाजपेयी को जो 'शब्द' पर अपार भरोसा अगाध विश्वास है वह अतुलनीय हैं। शब्द पर आधारित ढेर सारी कविताएँ उनकी हैं, जिसमें उन्होंनें शब्द की महिमा, शक्ति और स्थायित्व के बारे में बहुत ही गम्भीरता के साथ अपना विचार रखते हैं। जिसे देखते हुए अशोक वाजपेयी के लिए साहित्य का प्रयोजन क्या है अच्छी तरह समझा जा सकता है। शब्द पर अर्थात कविता पर कवि अशोक वाजपेयी को इतना भरोसा हैं, इतना भरोसा हैं, बस इतना कहा जा सकता है कि इन सब कविताओं के आधार पर कवि अशोक वाजपेयी मार्क्सवादी नहीं मार्क्सवादियों के बाप ठहरते हैं। स्पष्ट रहें कवि अशोक वाजपेयी न मार्क्सवादी है और न मार्क्सवाद के विरुधी। कवि अशोक वाजपेयी द्वंद्व नहों प्रेम की बात करते हैं। भौतिक अवयवों से नहीं हृदय परिवर्तन के द्वारा समाज में, विश्व में अमन–चैन कायम करना चाहते हैं। यहाँ कहीं न कहीं गांधीजी के विचार से कवि अशोक वाजपेयी का विचार एकमेव हो जाता है। जैसा कि शब्द सम्बंधी अशोक वाजपयी

की ढेर सारी कविताएँ हैं, उनमें से दो-एक उदाहरण दे देना ठीक रहेगा। एक कविता है 'अगर वक्त मिला होता' शीर्षक से जहा कवि कहना चाहते हैं कि दुनिया को बदलने के लिए न जाने क्या क्या तरीका, कितने उपाय निकाले गये हैं। यहा कवि का इशारा भौतिक परिवर्तन की ओर है लेकिन सही अर्थ में दुनिया को सुन्दर और सुघर बनाने के लिए शब्दों के लुहार अर्थात कवि-साहित्यिक शब्दों के द्वारा नया चका अर्थात रास्ता अवश्य बना सकते हैं —

**'दुनिया को यों बड़ी मेहनत मशक्कत से**
**बदलतो होगी**
**फौज फँौटे और औजारों-बाजारों से**
**लेकिन शब्दों का एक छोटा सा लुहार**
**और नहीं तो**
**अपनी आत्मा की भट्टी में तपते हुए**
**इस दुनिया के लिए**
**एक नये किस्म का चका ढालने की**
**जुर्रत कर ही सकता था।'** [31]

जिस प्रकार जीवन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है तथा मनुष्य सृष्टि से अपने उपयोग के लिए विभिन्न प्रकार के पदार्थो का संग्रह करता है, उसी प्रकार साहित्य भी मानव जीवन से सम्बधित तत्वों और पदार्थो की व्याख्या करता रहता है। साहित्य का अध्ययन सृजन एक प्रकार से मानव सत्ता का अध्ययन है। अशोक वाजपेयी का भी मानना हैं कि — 'साहित्य व कलाएँ अपने आप में मानव अस्तित्व पर दृष्टिपात है, दृष्टि का उपनिवेश नहीं।' [32] असल में साहित्य का वुनियादी स्वभाव ही है संवाद। साहित्य का सृजन ही तब किया जाता है जब हम बोलना चाहते हैं दूसरों के बारे में यहाँ तक कि संसार, ईश्वर और प्रकृति से भी। और हम अपनी सकल

अनुभूति या मसलन हर्ष या विषाद, प्रेम या क्षोभ, आसक्ति या विराग का दूसरों के साथ साझा करना चाहते हैं। मतलब साहित्य का प्रयोजन सिर्फ अपने तक या दूसरों तक सीमित नहीं हैं। संसार, ईश्वर और प्रकृति भी साहित्य से बाहर नहीं हैं। कुछ ऐसा ही विचार कवि अशोक वाजपेयी का है— 'यों तो अपने बुनियादी स्वभाव में साहित्य या संस्कृति संवाद ही है, हम लिखते हैं क्योंकि हम बोलना चाहते हैं, संसार से, ईश्वर से, प्रकृति और दूसरों से बतियाना चाहते हैं। हम जो अनुभव कर रहे हैं हर्ष या विषाद, प्रेम या क्षोभ, आसक्ति या विराग उसका हम दूसरे से साँझा करना चाहते हैं। इस साँझे से हम भी पहलीबार जान पाते हैं कि असल में वह क्या था जो हमें परेशान या अभिभूत कर रहा था। बात करना अपने को और अपनी दुनिया को, उसके जटिल और सुक्ष्म रिश्तों को जानना है, दूसरों को जाने बिना हम अपने को ठीक ठीक जान पाते हैं?' [33] ऐसे ही विचारों की अभिव्यक्ति 'संवादकथा' शीर्षक कविता की इन पक्तियों में देखा जा सकता ह —

**'नैवद्य छोड़कर भाग रहे देवता ने इस सबको अपनी पुरानी पोथी में दर्ज किया**

**और अपनी कक्षा से विचलित हो गये एक आवारा नक्षत्र से कहा कि ब्रह्माण्ड**

**और आदमी की कविता में अभी भी सब कुछ सम्भव है।'** [34]

कवि अशोक वाजपेयी के लिए साहित्य का प्रयोजन अनेक तो हैं ही उसके साथ साथ साहित्य का प्रयोजन सिर्फ अपने समय तक महदूद नहीं हैं। साहित्य अपने समय को चीरते हुए उसके पार निकल जाते हैं। अर्थात साहित्य का विषय-लक्ष्य सिर्फ वर्तमान तक सीमित नहीं है उसमें भविष्य का भी एक तत्व रहता है। केवल 'जो है' वह साहित्य के लिए पर्याप्त नहीं है 'जो नहीं है' वह भी साहित्य के लिए जरुरी है। जो होगा, जो होना चाहिए और जैसा हो सकता था, यह सब साहित्य का विषय और प्रयोजन हैं। कवि अशोक वाजपेयी की भाषा में — 'साहित्य में हमेशा एक वह तत्व है जो भविष्य का है; यानी जो नहीं है वह।

इसलिए केवल वास्तव, यानी जो है, साहित्य के लिए पर्याप्त नहीं है। जो होगा, जो होना चाहिए, जैसा हो सकता था–साहित्य अनेक विकल्पों का रोजगार है।'[35] कवि अशोक वाजपेयी के अनुसार साहित्य को समय नहीं जगह चाहिए। फैलने के लिए चाहिए हरा वितान, समय तो घिरा–अटा है। उनकी कविता 'शब्द नहीं गिरते' की इन पंक्तियों इस प्रसंग में उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'शब्दों को सिर्फ समय नहीं, जगह चाहिए।**
**उन्हें चाहिए सुलगने के लिए सुनसान।**
**फैलने के लिए चाहिए हरा वितान।**
**समय घिरा अटा है,**
**उसके पास जगह की तंगी है:**
**शब्द गिरते हैं धरती पर**
**समय पर नहीं।'**[36]

कवि आलोचक अशोक वाजपेयी इस विचार को अपनी कविताओं और आलोचनाओं में बार–बार दोहराते हैं कि कविता कालसम्भवा होती है, काल बाधित नहीं और वे कहते हैं कि बास्तव में वही कविता समय के साथ सही और सर्जनात्मक सम्बन्ध स्थापित कर पाते हैं जो समय के पार जा सकते हैं। इस बात की पुष्टि कवि आलोचक नन्द किशोर आचार्य जो अशोक वाजपेयी की एक कविता संग्रह 'इबारत से गिरी मात्राएँ' की भूमिका में इस तरह से करते हैं— 'कविता काल सम्भवा होती है, काल बाधित नहीं। अशोक वाजपेयी की कविता न केवल इस बात से बखूबी वाकिफ है बल्कि यह भी जानती है कि कविता का समय से सम्बन्ध सर्जनात्मक तभी हो पाता है जब समय की सेवा में उपस्थित होने के वजाय कविता उसी के माध्यम से उस का अतिक्रमण करती और अपना निजी सच बरामद करती हैं। ये कविताएँ समय के सच की अनदेखी न करते हुए, बल्कि उसे बूझते हुए और

शायद इसी कारण चाहती हैं कि शुरू को आखिर तक ले जाने वाली डोर/सपने की ही हो, भले सच से बिंधी हुई क्योंकि कविता अन्तत :— सपने के परिवार की होती है, सच की बिरादरी की नहीं।' [37] कवि अशोक वाजपेयी मानते हैं कि साहित्य मानव के जीवन के महत्तम समापवर्त्य की खोज है, वह महत्तम जो सबमें हैं, सर्वनिष्ठ। आज का साहित्य सिर्फ आज के मनुष्य के प्रयोजन से उद्भव होता है, और उसे पुराता है ऐसा नहीं है। आज का साहित्य उसके लिए भी रचा जाता है और जाना चाहिए जो कल पैदा होंगे। जैसा कि पीछे की साहित्य आज क जीवन में शामिल है। अर्थात साहित्य का प्रयोजन का सम्बन्ध तीनों कालों से हैं। दूसरी भाषा में कहें तो साहित्य में भूत, भविष्य और वर्तमान की आवाजाही चलती रहती है। साहित्य में स्मृति, अनुभव और कल्पना सम्भवतः इन तीन कालों के समवर्ती हैं जो एक साथ मिलकर ही रचना को सम्भव करते हैं और उसकी अखंडता निर्मित करते हैं। उदाहरणार्थ —

**'मैं चाहू तो रद कर सकता हूँ**
**खिड़की पर अटकी हुई शाम को आखिरी धूप,**
**अँधेरे कोने में जम-सो गई ठंड**
**समय रे सुनसान के पार उधरता प्रेम चहरा।'** [38]

कवि अशोक वाजपेयी के लिए साहित्य का एक और प्रयोजन है जिसका सम्बन्ध जीवनान्त से है। कवि उम्मीद करते हैं कि मरने के बाद भी कुछ समय के लिए ही सही साहित्य में वे जिन्दा रहेंगे। या रहना चाहते हैं। यह भी साहित्य का एक प्रयोजन है। सच तो यह है इस तरह की उम्मीद हर एक कवि-लेखक को है, चाहे इसे कोई व्यक्त करे या न करे। लेकिन कवि-आलोचक अशोक वाजपेयी सिर्फ व्यक्त ही नहीं करते हैं वो तो इसे साहित्य का एक प्रयोजन के बतौर स्वीकारते हैं और दूसरों को बताते हैं कि हा: यह भी साहित्य का एक प्रयोजन है।

कवि कहते हैं— 'कविता सच या किसी महान अनुभव की तलाश है या नही, मैं नहीं जानता। पर इतना तय है कि कवि कविता के माध्यम से अपनी जगह की तलाश करता है। उसे मानवीय अनुभव, नियति, उपस्थिति, अनुपस्थिति नश्वरता के प्रश्नों से उलझाती है। इस उलझाव के बिना कोई सार्थक तलाश मुमकिन नहीं जो कविता इन प्रश्नों से अपने को अलग रखती हैं, उसे अपनी जगह न समझ आ सकती है, न ही अन्ततः मिल सकती हैं'।[39] कवि आलोचक अशोक वाजपेयी इस बात को अच्छी तरह जानतै हैं कि इस तरह से साहित्य में जिन्दा रहना वह भी मृत्यु के बाद आसान मामला नहीं है। यह मुकाम हासिल करना सबके वश की बात भी नहीं है। इसके लिए न जाने कितने शर्ते पूरी करनी पड़ती हैं और न जाने कितनी चीजों से दूर रहना जरुरी होता है। इस मामले में जो सबसे बड़ी बात है साहित्य में जिन्दा रहने के लिए जो शर्ते पूरी करनी पड़ती हैं वह किसी के द्वारा दिया गया नहीं है। वो तो स्वंय कवि या लेखक को बनाना पड़ता है, जो स्वंय सृजित होती हैं। कवि अशोक वाजपेयी अपनी 'हलफ' शीर्षक कविता में इस बात पर विचार-विमर्श करते हैं। कवि अशोक वाजपेयी हमेशा अपनी कविता और रचना-कर्म में इसका ख्याल रखता है कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए उदाहरण के रूप में उनकी कविता 'अलक्षित-दो' में देखा जा सकता है कि कवि किस तरह अपने लिए रास्ता बनाते हैं जहाँ से होकर वे चलना चाहते हैं —

**'मेरे पाँव और धर धरती में जमें हैं।**
**मैं खिड़की खोलकर सूर्य की स्वागत करता हूँ।**
**मैं थककर ठण्डे पानी से मुह धोता हूँ।**
**मैं हवा में सुखी पत्ती-सा उड़ जाता हूँ।**
**मैं आग में सेंकता हूँ अपनी रोटी**
**मैं आकाश की तरफ हाथ नहीं सिर उठाता हूँ।'** [40]

जाहिर सी बात है कवि अशोक वाजपेयी जिस रास्ते की बात करते हैं, जो आकाश की तरफ हाथ नहीं सिर उठाने की बात करते हैं, वह सिर्फ उनके लिए नहीं सबके लिए होना चाहिए। कवि अशोक वाजपेयी भी मूलत : यही चाहते हैं, कवि निश्शब्द प्रार्थना करते हैं कि जीवन वही सच्चा और अच्छा है जहाँ (जीवन में) सिर झुकाकर घुटनों के बल रेंगकर कुछ न करना पड़े। 'प्रार्थना-दो' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

> **'हो सके तो**
>
> **कम-से-कम एकबार ऐसा जीवन दो**
>
> **जिसमें सिर झुकाकर घुटनों के बल रेंगकर कुछ न करना पड़े**
>
> **जो स्वंय निश्शब्द प्रार्थना है।'** [41]

और इसे अशोक वाजपेयी साहित्य का एक सशक्त प्रयोजन समझते हैं। वे मानते हैं कि साहित्य में, अपनी प्रार्थना में दबी चीख सुनना चाहिए। कवि अशोक वाजपेयी की कविता 'प्रार्थना और चीख के बीच' के प्रसंग में पुरूषोत्तम अग्रवाल जी ठीक ही कहते हैं — 'कविता कवि द्वारा खुद को याद-दिहानी है कि यदि उसके अपने समय में कुछ ऐसा हो तो उसे क्या नहीं करना चाहिए, और क्या करना चाहिए। कविता स्मरण-पत्र है कवि मानस द्वारा नागरिक को, कवि के सामाजिक व्यक्तित्व को कि अपने अनुभव में आए किसी भी आश्विट्ज-पल में कर्तव्य है — 'अपनी प्रार्थना में दबी चीख सुनना' ताकि 'शब्दों' के अवसाद में वह जगह बार-बार पहचानी जा सके जहाँ प्रार्थना और चीख के बीच स्थगित कविता रखनी हैं।' [42]

कवि आलोचक अशोक वाजपेयी इसे और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इस तरह से बचे रहने का हक बहुत कम संख्यक आदमी को हैं। वही थोड़ा-सा आदमी बच सकता है जो रौब के सामने गिड़ गिड़ाता नहीं है, जो कभी भी सच से विचलित नहीं होते हैं अर्थात किसी भी हालत में लोभ-मोह आदि के वशीभूत न

होकर सच को थामे रहते हैं। हर हालत में सच के पक्ष में खड़े होते हैं, जो अपने और अपने परिवार के सुख-वैभव के लिए दूसरों का हक छीनता नहीं है। इसके विपरीत जो स्वयं दु:ख भोगकर दुसरों की सुखी के बारे में सोचता है, और वह आदमी जो अपनी अस्मिता के साथ साथ अपनी संस्कृति का भी खयाल रखते हैं कुछ पंक्तियाँ 'थोड़ा सा' शीर्षक कविता से —

**'अगर बच सका**
**तो वही बचेगा**
**हम सबमें थोड़ा सा- आदमी**
**जो रोब के सामने नही गिड़गिड़ाता,**
**अपने बच्चे के नम्बर बढ़वाने नहीं जाता मास्टर के घर,**
**जो रास्ते पर पड़े घायल को सब काम छोड़कर**
**सबसे पहले अस्पाताल पहुँचाने का जतन करता है,**
**जो अपने सामने हुई वारदात की**
**गवाही देने से नहीं हिचकिचाता —'** [43]

## निष्कर्ष:

बहुलतावादी कवि-आलोचक अशोक वाजपेयी के साहित्य का प्रयोजन आकाश जैसा खुला हुआ समुद्र जैसा विशाल-विस्तृर्ण हवा जैसी निराकार मगर हर कहीं मौजूद। अर्थात साहित्य का मामला कवि अशोक वाजपेयी के लिए कोई छोटा-मोटा या आसान मामला नहीं है। जीवन ही साहित्य है साहित्य ही जीवन। जीवन में, जगत में साहित्य की अपरिसीम भूमिका है। जीवन ही साहित्य का आधार है और साहित्य ही जीवन को सुधारता-मांजता है। संकीर्णता-सीमाबद्धता अशोक वाजपेयी में है ही नहीं। कवि अशोक वाजपेयी के समस्त कवि-कर्म तथा आलोचना-आयोजन और सम्पादन सभी में से होकर गुजरने के बाद यह स्पष्ट होता

है कि अशोक वाजपेयी के लिए साहित्य का प्रयोजन कोई एक नहीं अनेक हैं। अवश्य कहीं-कहीं वह इतना सूक्ष्म है कि नजर में नहीं आता। लेकिन वहाँ भी प्रयोजन है यानी किसी न किसी प्रयोजन से ही उसका सृजन हुआ है। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा सकता है, कवि अशोक वाजपेयी अपने जीवन में भारत भवन में रहते हुए और उसके बाहर जितने भी आयोजन किए और जिस कारण ढेर सारी कटु और कड़वी आलोचना का मुखातिब उनकी को होना पड़ा। उन सब में भी प्रयोजन और प्रभाव है। उनमें सारी उत्सव धर्मिता के बावज्द् अन्तर्निहित सामाजिक प्रयोजन और मूल्य चेतना विद्यमान है। इस प्रंसग में प्रभात त्रिपाठी का कथन उल्लेखनीय है — 'आयोजन प्रियता शायद अशोक के स्वभाव का ही हिस्सा है और शासकीय नौकरी में आने से पहले छात्र जीवन में ही वह आयोजन की शुरूआत कर चुका था। 'समवेत' का प्रकाशन इसका एक उदाहरण है। मुक्तिबोध जैसे कवि को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के साहित्यिक वर्चस्व के जमाने में सागर के प्रतिष्ठापूर्ण आयोजन में केन्द्रीय महत्व देने की घटना को आज भी उसके कोई मित्र याद करते है; हालाँकि तब मेरा उससे कोई परिचय नहीं था। ...... मुझे उसके स्टेमिना पर हैरत होती थी, कि एक आयोजन पूरा हुआ नहीं कि दूसरे आयोजन की रूप रेखा उसके दिमाग में बनने लगती थी। स्थिति यह थी कि हर आयोजन के बाद, हिन्दी साहित्य के संसार मे उसके दुश्मण ही ज्यादा बढ़ते थे। पर कविता और कला के मामले में अशोक को दोस्तों और दुश्मणों की परवाह नहीं थी। लेकिन क्या कविता और कला का इस तरह के आयोजनों के साथ कोई आत्यन्तिक सम्बन्ध है ? जाहिर है कि अपनी सारी उत्सव धर्मिता के बावजूद अशोक के मन में, इन आयोजनों में अन्तर्निहित सामाजिक प्रयोजन और मूल्य चेतना हमेशा जीवन्त रहती थी।' [44]

साहित्य में मनुष्य का कुछ ऐसा जाहिर होता है जो अन्यथा सम्भव ही नही है। मानव जीवन के मूलतः अन्तर और बाह्य दो जीवन होते हैं। बाह्यिक जीवन को हम सामाजिक जीवन के रूप में समझते-स्वीकारते हैं, देखा जाय तो साहित्य की भूमिका मनुष्य के इन दोनों जीवन में है। साहित्य समाज विमुख भी नहीं हैं और सर्वथा वह निजी मामला भी नहीं। स्वयं कवि अशोक वाजपेयी का मानना है — 'साहित्य न तो सामाजिक सरोकारों तक महदूद हो सकता है, न ही वह सर्वथा निजी मामला है। मुश्किल यह ह कि इधर बरसों से ऐसा बौद्धिक माहौल बनाया गया है कि वह कुछ तथाकथित सामाजिक दृष्टियों के उपनिवेश से अधिक कुछ नहीं माना जाता। यह अपने आप में साहित्य के प्रति उपभोक्तावादी दृष्टिकोण है, आप उसमें, उसकी पूरी जटिलता में रस नहीं लेते बल्कि उसके सामाजिक सरोकार का उपभोग करते हैं। साहित्य जीवन और भाषा में साहित्यकार की हिस्सेदारी है।'[45] इस कथन सें कवि स्पष्ट करना चाहते हैं कि साहित्य की परिधि जिस तरह से विशाल-विस्तृर्ण है उसी तरह साहित्य का प्रयोजन भी किसी एक-दो तक सीमित नहीं, अनगिणत-असंख्य हैं। और ऐसा इसलिए भी है कि कवि अशोक वाजपेयी किसी भी विचारधारा या वाद में गिरपल नहीं रहें। कवि की इस तरह का विचार का स्पष्टीकरण उनके निम्नलिखित उक्ति में देखा जा सकता है — 'हमारे समय, समाज और सच्चाई की अनेक तहें और स्तर हैं और मेरी कविता में इनमें से कुछ को साफ देखा जा सकता है — अलबत्ता शायद वे ऐसे पहलू हैं जो थोड़े वारीक प्रायः अलक्षित हैं।' [46] कुल मिलाकर कवि आलोचक अशोक वाजपेयी का साहित्य के प्रयोजन सम्बन्धो जो विचार उसका निचोड़ यही है कि 'साहित्य' समाज में पैदा होता है और उसका सृजन करने वाला मनुष्य ही है अतः साहित्यकार मनुष्य के इन्द्रिय बोध को विकसित और परिष्कृत करता है। कवि या लेखक मूलतः मानव के भावबोध का संस्कार और विस्तार करता है। भावप्रवण और भाव सम्पन्न मनुष्य के

निर्माण को संभव बनाता है। साहित्यकार संस्कृति का निर्माण करता है, शिल्पी है वह मानव आत्मा का। साहित्यिक मानव जीवन में उदात्त मूल्यों की स्थापना करता है। अत: साहित्य मन को मानवीय, जन को जनवादी और मानव को मानवताबादी बनाता है। तभी तो वे 'कुछ तो' शीर्षक कविता में कहते हैं —

**'कुछ बचेंगे शब्द**
**तो कुछ बचेगी रोशनी भी**
**और रोशनी बचेगी**
**तो कुछ यह दुनिया भी।'** [47]

जो भी 'शब्द' को बचाते हैं अर्थात जाने अनजाने इस दुनिया सम्भव और सुन्दर बनाते है, उन सबकी स्तुति करते हैं कवि अशोक वाजपेयी, उन सबके सामने सिर झुकाते हैं। कवि और वस्तुत: इसी को यही साहित्य का प्रयोजन भी मानते हैं—

**'मेरी कविता उन सबके सामने सिर झुकाती है**
**जो हमारी दुनिया को संभव और सुन्दर बनाते हैं,**
**बिना जाने या जताए कि वे ऐसा कर रहे हैं**
**आज मेरी कविता सिर्फ उनकी स्तुति हैं।'** [48]

कुलमिलाकर साहित्य का प्रयोजन सम्बंधी कवि आलोचक अशोक वाजपेयी का जो विचार उभरकर सामने आती हैं वह अत्यन्त विस्तृत और खुला हुआ है। उनके अनुसार व्यक्ति और समाज के बाह्य और आंतरिक जीवन के साथ साथ भारतीय सांस्कृतिक पृष्टभूमि भी साहित्य के अन्तर्गत हैं। साहित्य हर हमेशा केवल मनोरंजन नहीं है उसमें धार्मिक, नैतिक और साहसिक प्रेरणाए भी प्राप्त होती हैं। स्पष्टट: उनकी कविताऐ इसका प्रमाण हैं। वास्तव में देखा जाता है कि कवि अशोक वाजपेयी के लिए न तो 'कला कला के लिए हैं' और न ही 'कला जीवन

के लिए' हैं। वे इन दोनों का सामंजस्य में विश्वास करते हैं। इन दोनों के समन्वय में ही कला या साहित्य की पूर्णता और सार्थकता है निहित है। साहित्य का अर्थ केवल प्रेम और सौन्दर्य साधना नहीं है न ही केवल नैतिकता का आख्यान। अत: उच्चस्तर के साहित्य में इन दोनों का समन्वय अनिवार्य है और कवि अशोक वाजपेयी मूलत : इसी को साहित्य का प्रयोजन स्वीकारते हैं। उनकी कविता इसे प्रमाणित करती हैं।

# जीवन और कविता

जीवन और कविता दोनों अभिन्न है। जैसे श्वास और धड़कन। जीवन के बिना कविता असम्भव है। यों तो कविता का जीवन भी अपने आप में एक सम्पूर्ण जीवन है। जहाँ अकेलेपन में भी शेष या कि दूसरे शामिल है। मानव प्रवृत्तियों का तथा प्रकृति के नित परिवर्तित रूपों का चित्रण ही कविता का जीवन है। कविता या कि साहित्य मूलत : भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति हैं। अत: कविता मानव जीवन से अभिन्न है। मनुष्य एक मननशील प्राणी है। उसका हृदय अनेक प्रकार के भावों का अजस्त्र स्त्रोत हैं। इन भावों की अभिव्यक्ति के लिए विविध कलाओं का जन्म हुआ है। कविता भी उनमें से एक है। एक कवि सबसे पहले एक मनुष्य है, वह मनुष्य का जीवन जीते हैं वह भी समाज में रहकर। ताप्तर्य यह हुआ कि व्यक्तिगत जीवन के साथ-साथ सामाजिक जीवन मे जो अनुभव और अनुभूति कवि को होता है, उन सबकी अभिव्यक्ति ही कविता है। जिससे यह साबित होता है कि जीवन और कविता कहीं अलग-अलग नहीं है। सिर्फ कविता ही क्यों? संसार के सम्पूर्ण साहित्य के मूल में अनुभूति ही है। कवि या साहित्यकार की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ ही प्रकारान्तर से न उनकी कविता या साहित्य में अभिव्यक्त होता है। शायद इसलिए निर्मल न्यूमैन ने साहित्य को भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति कहा है। हिन्दी साहित्य के जाने माने आलोचक हजारी प्रसाद द्विवेजीने साहित्य को समाज का दर्पन और ज्ञानराशि का संचित कोश कहा है। किसी आचार्य ने साहित्य को जीवन से अभिन्न माना, तो किसी ने साहित्य को जीवन की समीक्षा और किसी ने उसे जीवन की अभिव्यक्ति बतलाया। इस प्रकार साहित्य की अनेक परिभाषाओं में एक बात अवश्य स्वीकार की गई है और वह है इसका मानव जीवन से संबंध।

आधुनिक कवि अशोक वाजपयी के लिए तो बात ही कुछ और है। उन्होंने जीवन और कविता को कहीं भी अलग करके देखा ही नहीं उनके लिए जीवनधारा

और काव्यधारा एक ही हैं। उनकी कविताएँ इसका जीता–जागता साक्ष्य है। कविता के अलवा भी कवि अशोक वाजपेयी अपनी आलोचनाओं में यह बात बार–बार दोहराते है कि बिना जीवन के कविता कतई सम्भव नहीं, कविता और जीवन का संबंध अनन्याश्रित है। इस सन्दर्भ में कवि अ.वा.का कथन द्रष्टव्य हैं – 'कविता के केन्द्र में तो प्रथमत: और अन्तत: स्पंदित जीवन ही होता है: उसके अनुभव, संघर्ष, तनाव– उसका अनन्त रहस्य उसके अडिग आश्चर्य उनकी अथक चिन्ताएँ, उसकी खुली उत्सुकताएँ। मैं उम्मीद यही करता हूँ कि मेरी कविताओं की केन्द्रीय वस्तु यही है: असमाप्य जिजीविषा, गहरी जीवनासक्ति, मनुष्य होने का विस्मय और विषाद, शब्दों का जीवट और लालित्य, भाषा के रूप में मनुष्य की अनश्वरता का अदम्य गान।[49] कवि अशोक वाजपेयी संसार और जीवन के, प्रेम और मृत्यु के रहस्य में भरोसा करते है और इन रहस्य को कविता के माध्यम से छूने की कोशिश करते है, कविता में व्यक्त और विन्यस्त करना चाहते है। इस तरह कवि अशोक वाजपेयी की कविताएँ और जीवन कहीं न कहीं एकमेव हो जाता है। उन्हीं की भाषा में भरोसा करता हूँ और इस रहस्य मयता को कविता में जैसे कि जीवन में, सहजता और विन्यास्त करना चाहता हूँ।[50] कविता वह जगह है, वह माध्यम है जो समकालीन सारे अमानुषीय और दुषित वातावरण में भी आदमी और शब्द की उत्तर जीविता को बचाके रख सकता है। कवि अशोक वाजपेयी अपने 'ततपुरुष' शीर्षक काव्य–संग्रह की भूमिका में कहते हैं — सारे समकालीन विपर्यास, विध्वंस और सकोच के बरक्स ये कविताएँ जगह, आदमी और शब्द की उत्तर जीविता का शान्त और विनम्र विन्यास है।[51] उसके लिए 'शब्द' शीर्षक कविता में कवि अशोक वाजपेयी कुछ यों कहते हैं–

**'जब मैं उसके लिए शब्द चुनता हूँ**

**तो दरअसल अपने जीवन के लिए कण चुनता हूँ:**

**हर इबारत**

**मेरे जीवन का छोटा सा विन्यास है**

**जिसका व्याकरण है।'** [52]

कवि अशोक वाजपेयी के अनुसार जीवन और कला दोनों विश्वसनीय हैं दोनों एक दूसरे को प्रेरित और परिष्कार देती है। विकल्प जीवन और कला के बीच नहों है। उन्हें भरपूर जीवन भी चाहिए और भरपूर कला भी। जो किसी भी आदमी को एक भरपूर आदमी बनने के लिए और बने रहने के लिए जरुरी है। कवि अशोक वाजपेयी की भाषा में– 'जीवन सच्चा और विश्वासनीय है जीवन अगर कला को प्रेरित करता है तो कला भी सच्ची और विश्वसनीय है, कला भी जीवन को परिष्कार देती है। विकल्प जीवन और कला के बीच नहीं। मुझे भरपूर जीवन भी चाहिए और भरपूर कला भी। अगर एक भरपूर आदमी बनना या बने रहना है तो कम से कम किसी एक से काम नहीं चलेगा।' [53] (उम्मीद का दुसरा नाम) सच्चाई तो यह है कवि अशोक वाजपेयी के लिए कविता और जीवन अलग–अलग है ही नहीं–

**'झरते छिटकते कुतरे जाते भी हम**

**बचा–खुचा जो बटोर–सहज रहे हैं**

**क्या यहीं जीवन है**

**या कि कविता ?'** [54]

'जीवन या कविता' शीर्षक कविता की इन पक्तियों में कवि अशोक वाजपेयी भावनाओं के स्तर पर मृत्यु के बरक्स जीवन को टटोलते हुए आखिर मृत्यु को अवश्याम्भावी जानत और मानते हुए भी जीवन को महत्व देते हुए कविता लिखते हैं। क्योंकि मृत्यु अवश्य एकदिन जीवन को ग्रास करेगा, जीवन का अन्त होगा लेकिन कविता में जीवन बचा रहेगा। कुछ ऐसा ही विचार अरविन्द त्रिपाठी

का भी हैं वे भी मानते है कि मृत्यु सम्बंधी कवि अशोक वाजपेयी की जो कविताएँ हैं उन सब में मूलतः कवि मृत्यु सो या मृत्यु की त्रासीदी से बाहर आना चाहते है। आगे चलकर यही कोशिश मृत्युबोध सम्बंधी कविताओं को वे उम्मीद की कविता बनाती है जावन में। यही जो जीवन के प्रति गहरी आसक्ति उनकी कविताओं की पहचान बनती है। अरविन्द त्रिपाठी की भाषा में – 'दरअसल मृत्यु से बाहर आने की यह कोशिश ही अशोक की मृत्यबोध सरीख कविताओं को गहरी उम्मीद की कविता बनाती है। यानी मृत्यु के बाद भी एक उम्मीद है – जीवन में। कहना न होगा जीवन के प्रति यह गहरी उम्मीद अशोक के कवि कर्म की उपलब्धि है। उदाहरण के लिए 'बच्चे' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ उल्लेख किया जा सकता हैं–

**'बच्चे गा रहे हैं चट्टान के पार से**
**नीले से पेर**
**आराम करते पुरखों को पुकारते हुए**
**बच्चे फेंक रहे हैं**
**एक गेंद**
**मृत्यु के पार**
**इस उम्मीद में कि पिता**
**वापस भेजेंगे**
**बच्चे उड़ा रहे हैं**
**एक पतंग**
**अनंत में जानते हुए कि माँ**
**उसमें खिलौने लटकाकर लौटाएगी**
**बच्चे खेल रहे हैं**

**अपने निरन्तर होने**

**अमर होने का एक अंतहीन खेल**

**पुरखों के साथ**

**और मृत्यु को पराजित करते हुए**

**गा रह हैं।'** [55]

लगभग ऐसा ही मानते है परमानन्द श्रीवास्तवजी। उनका भी मानना है कि कवि अशोक वाजपेयी की मृत्यु सम्बंधी कविताओं में भी मूलतः 'जीवन-स्मृति' जैसे आकर्षण पैदा करने के साथ-साथ 'जीवन स्मृति' को गहरे मानवीय लगाव से प्रकट करती हैं। उन्हीं की भाषा में - 'एक पतंग अनन्त में संग्रह की आरम्भिक कविताएँ मृत्यु के अनुभव के नजदीक ले जाती हैं। इस खंड को 'अमर मेरी काया' नाम दिया गया है। मृत्यु के अनुभव का यह इस्तेमाल उसे 'जीवन स्मृति' जैसे आकर्षण की तरह ग्राह्य बनाता है। 'मौत की ढ्रेन में दिदिया', 'अमर मेरी काया', 'स्बर्ग में नरक', 'पिता के जूते', जैसी कविताएँ 'मृत्यु-सन्दर्भ' में निहित 'जीवन स्मृति' को गहरे मानवीय लगाव से प्रकट करती हैं:

**'दूसरों के लिए**

**जीवन भर मरने के बाद**

**अब वह जरूर स्वर्ग में होगी**

**दूसरों के लिए स्वर्ग**

**लेकिन हमारा**

**उसके आस-पास न होना**

**क्या उसके लिए नरक नहीं होगा'** [56]

इस तरह की भावनाओं का विस्तार आगे चलकर उनकी एक और कविता 'उतना अच्छा आदमी नहीं' में देखा जा सकता है। जहा कवि अशोक वाजपेयी की

जीवन से भी कही ज्यादा कविता पर भरोसा है। यह जानते हुए कि जीवन समाप्त हो जाएगा मगर कविता तो बचा रहेगा। इसलिए कवि जीवन के कई सच्चाइयों को कविता में ले गया उसके साथ - साथ सपने जो पुरा नहीं हुआ है, हो सकता है उसको पूरा होने में जीवन कम पड़ जाए उसको भी कविता में ले गया ताकि वह बचा रहेगा। कवि जीना चाहते हैं, आखिर कविता में ही सही-

**'मैंने जीवन और कविता को भी उलझा दिया**
**जीवन की कई सच्चाइयों और सपनों को कविता में ले गया**
**आश्वस्त हुआ कि जो शब्द में है वह बचा रहेगा**
**भले जीवन में नहीं।'** [57]

शायद ऐसे ही कुछ कारणों से मदन सोनी कहते हैं कि कवि अशोक वाजपेयी के लिए कविता या साहित्य अस्तित्व का एक वैकल्पिक रूप है। देखिए उनकी भाषा में- 'हमारे पास इस उत्पेक्षा के लिए पर्याप्त आधार उपलब्ध है कि अशोक वाजपेयी की दृष्टि में कविता या साहित्य अस्तित्व का एक वैकल्पिक रूप है।' [58]

इसी प्रसंग में मदन सोनीजी का एक और कथन महत्वपूर्ण है उनके अनुसार - 'कवि अशोक वाजपेयी के लिए कविता लिखना या उससे तादात्म्यि होना कोई ऐसा काम नहीं कि जैसा अन्यान्य मानसिक कर्म हैं। उनके लिए कविता लिखना हर तरह से एक स्वयं सम्पन्न, भिन्न और स्वायत्व जीवन जीना है। [59] कवि अशोक वाजपेयी भी यही कहते हैं कि कविता सिर्फ कविता नहीं है वह सिर्फ शब्दो के समाहार या जमघट नहीं है, वह मानवीय घटना है, और वह भाषा में मानवीय उपस्थिति है- 'कविता एक निपट मानवीय घटना है वह भाषा में मानवीय उपस्थिति है।' [61] जाहिर है कविता का जन्म जीवन से और जीवन के लिए होता है। 'विन्यास

से बाहर' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों में कवि अ.वा.की इन विचारों का खोलासा देखा जा सकता -

**'मृत्यु आराधना का संगीत, सुन-सान**

**नई पुस्तक का विसर गया समपर्ण**

**विदेशी सिक्कों की चमकती धातु का निष्करुण प्रलोभन**

**सुबह से ही एक निराश दिन की लाचार काया**

**इतनी सारी असम्वद्धताओं को**

**किसी अर्थातीत वास्तु में विन्यस्त करते हुए कविता कहती है**

**कि जीवन में कुछ भी बेतरतीब नहीं**

**भाषा में सबके लिए जगह है।'** [62]

इस दृष्टि से एक और महत्वपूर्ण कविता कवि अशोक वाजपेयी की जिसका शीर्षक है 'रूपक'। जिसमें कवि सहर्ष स्वीकारते हैं कि शब्द अर्थात साहित्य और कुछ नहीं कवि लेखक का जीवन का रूपक है अर्थात मनुष्य का। और वही शब्द कवि को जन्म और मृत्यु से मुक्त करता है। शब्द पर भरोसा कवि अशोक वाजपेयी को बहुत अधिक है जो सर्वविदित है। और इस तरह शब्द पर अधिक भरोसे को कवि मूलत: मनुष्य पर भरोसे का संस्करण मानते हैं। उनके लिए कविता में जीवन अक्सर अन्त:सलिल होता है। कवि शब्द यानी कविता के जरिए जन्म और मृत्यु से मुक्त होना चाहते हैं। कवि यहातक उम्मीद करते हैं कि भाषा के विन्यास में वह अर्थ की तरह दग्ध और दीप्त रहेगा-

**'तुम मेरा रूपक हो**

**वह शब्द**

**जो मुझे मुक्त करता है**

**अपने जन्म**

**अपनी मृत्यु से'** [63]

अक्सर हम जीवन में जो भी खोजते-तलाशते हैं और जिस ढंग से हम जीवन जीते हैं, जीवन को विन्यस्त करते हैं कहीं न कहीं उसी को हम जीवन-दृष्टि कहते हैं। और इस तरह से जीवन-दृष्टि जीवन को संभव बनाता है और जिसके बिना कविता असम्भव अर्थात जीवन-दृष्टि के बिना न तो जीवन संभव है, न ही कविता। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि जिस जीवन-दृष्टि की बात की जा रही है वह एक नहीं, अनेक हैं मतलव हम जो जीवन जीते हैं अपना-अपना जीवन, हम सबकी अपनी-अपनी अलग-अलग जीवन दृष्टि होती हैं या है। कवि, लेखक और कलाकार भी इससे बाहर नहीं हैं। हर एक कवि या लेखक की भी अपनी-अपनी जीवन दृष्टि होती हैं और उसी का इजहार वे अपनी लेखनी में करते हैं। आधुनिक मुर्धण्य कवि अशोक वाजपेयी की भी अपनी जीवन-दृष्टि है। और कुलमिलाकर वही जीवन-दृष्टि का इजहार/अभिव्यक्ति कविताओं में वे करते हैं। कवि अशोक वाजपेयी के अनुसार जिसके बिना न तो जीवन संभव है, न कविता। वे कहते है- 'हम जीवन में जो पाते-खोजते हैं और जिसे अपने जीवन को विन्यस्त करते है मोटे तौर पर हम उसे जीवन दृष्टि कह सकते हैं। उसके बिना न तो जीवन संभव है, न ही कविता।' [64] अवश्य कवि अशोक वाजपेयी स्पष्ट करते हैं कि यह जो दृष्टि वह हमें पहले से दिया हुआ या मिली हुई नहीं होती, वह हम जीने की प्रक्रिया में ही पाते हैं अर्जित करते हैं। स्पष्टत: आगे चलकर इसी को जीवन दर्शन कहते हैं। जैसा कि कहा गया है हरेक मनुष्य की अपनी-अपनी दृष्टि होती है अर्थात अपना - अपना जीवन दर्शन। कवि-आलोचक अशोक वाजपेयी का जो अपना जीवन-दर्शन है, जीवन के प्रति जो अपनी दृष्टि है उसके बारे में उनकी कविता या आलोचनाओं के आधार पर चर्चा आगे की जाएगी मगर इतना तो तय है कि उनकी दृष्टि अन्यों के जैसा होते हुए भी कुछ जुदा, कुछ अलहेदा है।

कवि अशोक वाजपेयी का सम्पूर्ण काव्य उनके आत्मा की अभिव्यक्ति हैं। उनकी कविताओं में चरितार्थ जीवन–दर्शन मूलतः जीवन के प्रति कवि अशोक वाजपेयी की जो दृष्टि है उसी का प्रतिफलन है। कवि अशोक वाजपेयी के अनुसार कविता सिर्फ विचार या दृष्टि अनुभव का विज्ञापन नहीं, नैतिक उपदेश नहीं अथवा धार्मिक अनुष्ठान नहीं हैं। कविता जीवनानुभूव होते हुए भी वह वैकल्पिक या स्थानापन्न जीवन है। 'हिसाब–किताव' शीर्षक कविता में कवि अशोक वाजपेयी कुछ यही कहते हैं कि जीवन में जो कुछ हुआ, जो कुछ किया सब मिलकर जिन्दगी है। और यही जीवन को किताब में अर्थात कविता मे ले जाने की कोशिश करते हैं मगर पूरी की पूरी जिन्दगी को किताब में लेना मुमकिन नहीं है –

**'मेरे साथ क्या हुआ इसका पूरा हिसाब तो मेरी जिन्दगी ही है**
**और उसे किताब में ले जाने की कुक कोशिश तो की है**
**पर पूरी का अँटना कठिन है:**
**पूरी जिन्दगी को किताब में ले जाने की हिकमत मुझे आती भी नहीं।'** [65]

जाहिर सी बात है देखते और जानने के बीच बहुत बड़ा अन्तर होता है, ढेर सारी परत होती हैं अर्थात भोगा हुआ यथार्थ और सुना हुआ यथार्थ एक जैसा नहीं होता है। तो कवि अशोक वाजपेयी इस गहराई को टटोलते हैं कि किताब में या कि कविता में हम जीवन की व्याख्या करते हैं मगर पूरा का पूरा सम्भव नहीं हो पाता है। इस प्रसंग में उनकी एक कविता 'हमेशा कम' से कुछपंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं –

**'देखने और जानने के बीच**
**ढेर सारी परतें हैं**
**आवाजे और थीखे हैं**
**जो देखता है कितना जानता है ?**

**जो जानता है**

**उसे कितना पता है कि क्या होता है ?**

**शब्द हमेशा कम है**

**देखने के लिए, जानने के लिए, होने के लिए ?** [66]

इस प्रसंग में स्वयं कवि का कहना है -- 'कविता किसी विचार या दृष्टि या अनुभव का विज्ञापन नहीं है, वह नैतिक उपदेश नहीं है, धार्मिक अनुष्ठान नहीं है, जीवन में रसी-बिंधी होने के बावजूद वह वैकल्पिक या स्थानापन्न जीवन है। शब्दों में रची जाकर भी वह सिर्फ शब्दों का शिल्प नहीं है। उसका सच ऐसा नहीं है कि उसका सार संक्षेप किया जा सके। वह हमेशा ही जीवन्मृत होती है: पाठक या रसिक जब उसे पढ़ता या सुनता है तभी वह अपनी पूर्णता पाती हैं। उसका सच हमेशा साझा सच है: उसमें कवि के सच के साथ जब पाठक का सच मिलता है तभी उसका सच रचा जाता है।' [67] कई बार कवि अशोक वाजपेयी को लगता है कि वह जो भरा-पूरा जीवन जीता है, उनकी जो जिजीविषा है लगता है कि वह कविता के लिए हैं। बिना कविता के उनका जीवन अर्थंहीन है वे कहते - 'शायद हर कवि की कविता उसकी आत्मा खासकर उनके मानव सम्बंधो की लाँग बुक होती है। कई बार ऐसा भी लगता है कि जैसे वास्तविक घटना उस कविता के निमित्त ही घटित हुई हैं। शायद कवि की जिजीविषा है कविता के लिए। वह भरा-पूरा जीवन जीता है कविता लिखने और लिखते रहने के लिए उसके लिए कविता के बिना जीवन का अन्ततः कोई गहरा या आध्यात्मिक अर्थ नहीं।' [68]

कवि अशोक वाजपेयी के लिए शब्द एक परम सच है। उनकी दृष्टि में जो कवि शब्द को नहीं साधता है वह जीवन को नहीं साध सकता। शब्द पर आस्था जीवन पर आस्था का ही रूप है। क्योंकि कविता का जीरा-नमक जिन्दगी ही है। वह भी आधे-अधुरा नहीं पूरी जिन्दगी है। और कविता से ही यह समझ पाते हं कि

हमारे पास भरी-पूरी जिन्दगी है। कवि अशोक वाजपेयी के शब्दो में - 'अक्सर हम धीरे-धीरे ही यह जान पाते हैं कि कविता को पूरी जिन्दगी चाहिए उसका काम, जैसे कि प्रेम का भी भरी-पूरी जिन्दगी से कम से पूरा नहीं पड़ता। यह भी होता ह कि हम कई बार कविता से ही यह जान-समझ पाते हैं कि हमारे पास भरी-पूरी जिन्दगी है अपने हर्ष-विषादों, सुखों-दुखों, तनावों और अन्तर्विरोधों से भरी और घनी। औरों के बारे में कहना मुश्किल है पर कवि तो जिन्दगी को कविता के माध्यम से हो पाता और जानता है।' [69] 'क्या चाहिए' शीर्षक कविता में कवि यही कहता है कि कविता बनाने के लिए क्या क्या चाहिए --

**'तुम्हें कविता करने के लिए क्या चाहिए।**
**बहुत सारा जीवन पूर्वज**
**प्रेम, आँसु, अपमान**
**लोगों का शोरगुल, अरण्य का एकान्त**
**भाषा का घर, लय का अन्तरिक्ष**
**रोटी का टुकड़ा, नमक की डली,**
**पानी का घड़ा**
**और निर्दय आकाश।'** [70]

रामेश्वर खण्डेलवाल 'तरूण' भी कुछ ऐसा ही मानते हैं मानव जीवन का पाट बड़ा चौड़ा है विराट है और उसका जो ताना-बाना है वह इतना सिधा और सरल नहीं है। जिसम बहुत कुछ समाहित हैं - 'मानव जीवन का पाट वड़ा चौड़ा है, विराट है, उसका ताना-बाना बड़ा जटिल और धूपछाँही है। उसकी पूरी प्रकल्पना में सुख-दुख, विजय-पराजय, अश्रु-हास, व प्रकाश अन्धकार, जन्म-मरण, विष-अमृत आदि के सब द्वन्द्व समाहित ह। इन सबसें मिलकर ही तो 'जीवन' जीवन कहलाता है। जीवन, स्रष्टा कवि के लिए तो इतना बड़ा शब्द है कि

मैथ्यू आर्णल्ड काव्य के सन्दर्भ में उसे महान और अपरिसीम (Great and inexhaustible word) कहता है।'[71] जीने की इच्छा, जीवन से मोह या जीवन के पति जो प्यार कवि अशोक वाजपेयी को है। जिसका वर्णन-विवरण उनकी कविताओं में हैं वह ऐसा नहीं है कि उसमें सिर्फ सुख-साधन हो, ऐश्वर्य और वैभव हो और अन्य का स्थान उसमें न हो। ऐसी बात नहीं है, वहा सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, तनाव, अन्तर्विरोध आदि सब कुछ हो सकता है, उसके साथ ही साथ उसमें दूसरों का समावेश भी है। इस प्रसंग में कवि अशोक वाजपेयी की कविता 'प्रार्थना' शीर्षक में देखा जा सकता है कि भारी शोरगुल और रक्त के ऐश्वर्य में भी वह दीपशिखा जलती रहती है। वह दीपशीखा ही कामना है, जीने की, जिजीविषा की

**'रक्त के ऐश्वर्य में**
**एक दिपशिखा जलती है**
**भारी शोरगुल**
**और चीजों के बेगानेपन के बावजूद**
**तुम जानते हो**
**कि वह कामना है।'** [72]

जोवन के प्रति मोह, कृतज्ञता और सार्थकता का बुनियादी भाव कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में जब-तब दिखाई देता है अर्थात अन्तर्धारा की तरह व्याप्त है, जो खीज, ऊब, निराशा या किसी भी हालत में सुखता नहीं है। जिस तरह से चिलचिलाती धूप में भी अमलतास और फूलों से भरा गुलमोहर प्रसन्न और खिला रहता हैं सारे अंग-प्रत्यंग के साथ। एक दिन मुरझा जाना है या झर जाना है इससे अमलतास और गुलमोहर उदास और दुखी नहीं है। उसे जितना भी समय मिला है उस समय को रंग में रँगते हुए और पँखुरी पँखुरी चुनते और बिखरते हुए खिला

हुआ है। उसी तरह से कवि अशोक बाजपेयी भी चाहते हैं कि जो भी जीवन हमें मिला है वह जितने दिन का भी क्यों न हों उसे जीना चाहिए हताश–निराश या खिन्न होकर नहीं। उस जीवन में ही सुख का अनुभव और अहसास होना चाहिए साथ ही दूसरों को भी दिलाना चाहिए क्योंकि फिलहाल हम खिलें हुए है। द:स्वप्नों और चिंता के कड़े समय में भी कवि अशोक वाजपेयी इस तरह का जीवन और सुख की कामना करते हैं। 'सुख का प्रस्ताव' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तिया –

**'एक दिन मुरझाने की प्रतीक्षा से दुखी**
**या अंततः झर जाने की नियति से उदास नहीं है**
**अमलतास या कि गुलमोहर**
**उन्हें जितना समय मिला है**
**उसमें प्रसन्न खिले हैं**
**इस समय को अपने रंग में रंगाते हुए**
**और पँखुरी–पँखुरी चुनते और बिखरते सुख**
**मैं इसी सुख का प्रस्ताव करता हूँ।'** [73]

कविताओं में या कविता लिखने की प्रक्रिया में यह जिजीविषा, मनुष्य होने का सीधा–सच्चा और एन्द्रिय अहसास अधिक पुष्ट और पुख्ता होता जाता है। उन्होनें लिखा हैं– मनुष्य होने का सीधा सच्चा और एन्द्रिय अहसास कविता में ही सम्भव हैं। जब हम परिवार, समुदाय, व्यवस्था आदि से टूट रहे हैं तो कविता हमें फिर से जोड़ने की भूमिका निभा सकती हैं। उसमें प्रश्नांकन भी हैं और सत्यापन भी है। ऐसी पंक्तियाँ बहुत सारी हैं। मैं तो अक्सर कहता रहा हूँ कि कविता मेरे लिए जीवन ही है।' [74] कवि अशोक वाजपेयी का यह भी मानना है कि अपने होने का बोध ही कविता से होता है और वह सबसे सक्रिय और ऊर्जस्वित। कविता उनका आत्मबोध है जितना वे कविता रचते हैं उतना या उससे ज्यादा कविता उनको रचती

हैं। यह आत्मबोध भी अपने तक सीमित नहीं हैं उसमें भी दूसरे शामिल हैं। उनका कथन हैं – 'कविता ही मेरा आत्मबोध है, जितना मैं उसे रचता हूँ उतना बल्कि शायद कुछ ज्यादा ही, वह मुझे रचती हैं। अपने होने का सबसे सक्रिय और ऊर्जस्वित बोध होता है मुझे कविता से। उसी में मुझे यह अहसास हो पाता है कि अपने से जो वृहत्वर है, बहुत सारा जो अनपहचाना बाहर वह भी जो अनजाना अन्दर है उससे मैं जुड़ रहा हुँ: मैं उनसे बोल रहा हूँ और वे मुझमें। मेरा आत्मबोध सिर्फ अपने में होने का  नहीं है– वह हमेशा ही दूसरों के साथ उनमें मेरे होने और उनके मुझमें होने का एक तरह का द्वन्द्वात्मक बोध है।' [75]

कविता हमेशा कल्पनाओं का समाहार और शब्दों का खेल नहीं है, वह एक निपट मानवीय घटना है, वह भाषा में मानवीय उपस्थिति है। कविता के लिए जीवन और अनुभव दोनों जरूरी है फिर कविता लिखना, कविता पढ़ना या कविता से प्रेम करना यह सब मूलत: जिजीविषा का ही प्रकार है। कविता लिखते हैं क्योंकि हम जिना चाहते हैं। कवि अशोक वाजपेयी के अनुसार अपने समय की कविता हमारी जिजीविषा तो है ही इसके साथ ही उसे और भरा–पूरा भी बनाता है, यही मूलत: कविता पर लिखने की मूल प्रेरणा भी है– 'कविता से अनुराग प्रथमत और अन्तत: जिजीविषा का ही प्रकार है। हमारे समय की कविता हमारी जिजीविषा को उकसाती और उसे भरा–पूरा बनाती है यह भरोसा ही कविता पर लिखने की मूल प्रेरणा रहा आया है।' (कविता का गल्प- भूमिका) कवि अशोक वाजपेयी का जीवन से अनुराग है अत: कविता से भी। कवि जीवन जीना–चाहते हैं और भर–पूर जीना चाहते हैं, टुकड़ो में नहीं। कवि अशोक वाजपेयी के अनुसार जीवन महंगा है उसे यों खोना नहीं है उससे भर–पूर प्यार करो और भर–पूर जिओ, तमाम मुश्किलों के बावजूद। यहाँ फिर से कहा जा सकता है कि कवि अशोक वाजपेयी के लिए जीवन का अर्थ निरे अपने तक नहीं। जीवन का मतलव पशु–पक्षी, पेड़–पौधे, घास–फूँस,

और नदियाँ और पत्थर भी हैं। यहाँ तक कि सभी कलाएँ तथा समूचा सजीव-निर्जीव जगत भी। के. सच्चिदानन्दन भी ऐसा ही कहते हैं- 'अशोक के लिए जीवन का मतलव पशु, पौधे, नदियाँ और पत्थर भी हैं। दूसरे शब्दों में उनके लिए कला की दुनिया के अलवा समुचा सजीव और निर्जीव जगत अपने आप में जीवन है न कि उनकी नकल।' [76] कविता भी जीवन का एक ढंग है, ऐसा नहीं कि यह कोई बेहतर या प्रभावी ढंग है, बस एक ढंग है। और तभी तो कवि इस तरह से भाषा, या कविता में जीते हैं, जीते रहते हैं। कवि अशोक वाजपेयी दयावती मोदी सम्मान ग्रहण करते हुए अपने वक्तव्य में कुछ यही कहते है- 'कविता जीवन का एक ढंग है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यह कोई बेहतर या प्रभावी ढंग है बल्कि एक अलग ढंग है। यह जीवन का भाषा में अनुकरण नहीं है, बल्कि यह एक प्रकार से भाषा में रहने के समान है। यह हमारे समय के स्थूल सरलीकरण के विरुद्ध एक मनुष्य का अपने जाने हुए सत्य के प्रति दृढ़ आग्रह है।' [77]

आधुनिक कवियों में अशोक वाजपेयी एक ऐसे कवि है जिनको जीवन के प्रति अगाध आस्था है। जैसा कि यह जीवन भी केवल खुशियों से भरा नहीं, तमाम मुश्किले और परेशानियों के बावजूद। आधुनिक कवियो में जीवन के प्रति इतना प्यार और इस तरह अगाध आस्था के कवि बहुत कम हैं। एक तरह से यही कवि अशोक वाजपेयी का अलग पहचान है और उनकी कविताओं का अलग स्थान है दरअसल प्रेम, प्रकृति, मानव सम्बंधों आदि में प्रकट जीवन के वैभव का कवि है अशोक वाजपेयी। कई बार लोग उन्हें गलत समझ लेते हैं कि वे मौज-मस्ती के आदी है। मौज-मस्ती ही उनकी जीवन शैली है। दरासल सच्चाई यह है कि उनके जीवन मे भी दुख है अवसाद है, कमि यें परेशानियाँ है, मगर कवि अशोक वाजपेयी जानते हैं कि यह सब भी जीवन का अंश है। इन सब कों झेल कर ही हमें जीना है, काम करना है। यदि सिर्फ दुखरा रोएंगे तो उसी में जीवन खत्म हो जाएगा और

अपने दुख दूसरों से कहने पर वह कम भी नहीं होगा, हो सकता है जिससे कहेंगे वही मूलत जिम्मेदार है। तो कवि अशोक वाजपेयी यही शैली अपनाते है कि हँसकर ही रोया जाय। 'मैं हँस रहा हूँ' शीर्षक कविता में कवि यही कुछ कहते हैं। कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा है —

**'मैं हँस रहा हूँ**
**क्योंकि जिन्दगी नाम की जो जगह हमें मिली हैं**
**उसमें आँसू टपकार भरने के लिए बरतन नहीं बचे**
**और हँसी हवा में बिखर जाती हैं**
**उसे न बरतन चाहिए, न कोई जगह**
**वैसे हँस कर रोया भी जा सकता है।'** [78]

वे अपने व्यक्तिगत जीवन में भोग-विलास या ऐश्वर्य वैभव के कवि है वैसा नहीं हैं, व्यक्तिगत जीवन में वे सामान्य मध्यवर्गीय जीवन शैली के हैं। कविता के जीवन में वे विशिष्ट होना चाहते हैं या एक अलग स्थान की कामना जरूर करते हैं। एक बातचीत के दौरान कवि अशोक वाजपेयी का कहना हैं - 'वैसी मेरी जीवन शैली सामान्य मध्यवर्गीय है जिसमें किसी तरह की शान-शौकत, वैभव की लालसा या मौजूदगी कभी नहीं रही। अगर, इससे अलग, आपका इशारा कविता से है तो विशिष्ट होना सभी कवियों की स्वभाविक आकांक्षा होती है सो मेरी भी है। मैं प्रेम प्रकृति, मानव सम्बन्धों आदि म प्रकट जीवन के वैभव का कवि हूँ तो इसमें दिक्कत क्या है? मैं जीवन का जब तब उत्सव मनाता हूँ और गहरे अवसाद से भी घिरा कवि हूँ तो इसमें गड़बड़ी क्या है? विपुलता विजातीय क्यों और कैसे है मैं समझने में असमर्थ हूँ। मेरे जैसे कवि के लिये जीवन की विपुलता ही, उसके रचे-स्मृत रूपों सहित, कविता की विपुलता का आधार है। मेरा यह कहना नहीं, मेरी कविता इसका प्रमाण है ऐसा मैं मानता हूँ। कोइ भी कवि बड़ा नहीं हो सकता अगर

उसकी कविता से जीवन और भाषा की, मनुष्य के अस्तित्व की विपुलता प्रकट न हो।' [79] आभिजात्य अपने व्यक्तित्व में या व्यक्तिगत जीवन में नहीं, कविता, भाषा और साहित्य के लिए अभिष्ट मानते हैं कवि अशोक वाजपेयी। के. सच्चिदानन्दन को इस प्रसंग में उद्धृत क्या जा सकता है उनको भी कुछ ऐसा ही मानना है- 'रघुवीर सहाय के बाद के कवियों में वाजपेयी की कविता अपना एक अलग स्थान रखती हैं- विशेषकर तमाम मुश्किलों के बावजुद इस धरती पर जीवन के प्रति अपनी अगाध आस्था के कारण।' [80] ज्योतिष जोशी भी लगभग यही कहते हैं, कवि अशोक वाजपेयी का जो कविता-संसार है वह अत्यन्त विस्तृत और विविधमयी है जहाँ कवि जीवन के गहन भावों के सघन मर्मो का चित्रण करते हैं। जीवन के अन्तरंग क्षणों को जो इतनी तादात्म्यता के साथ जीते है हिन्दी साहित्य में विरल। उम्र की फासलें को पार करते हुए उस अतीत में वे चले जाते हैं जहाँ की रम्यता मधुरता वर्तमान की कठोरता को कम करने की प्रेरणा देती हैं। आगे यही उनकी कविताओं का ताकत बनती है। देखिए उनकी शब्दों में- 'अशोक वाजपेयी की कविताओं का लोक इस अर्थ में बहुत विस्तृत है कि वहाँ जीवन के गहन भावों के सघन मर्मो की पहचान मिलती है। जीवन के अन्तरंग क्षणों को इतनी तादात्मयता के साथ जीनेवाले कवि हिन्दी-संसार में अधिक नहीं रहे हैं। अपनी आकांक्षा, स्मृति और बार-बार उम्र के फासलें को पार कर अतीत के उस जीवन में लौटना जहां की रम्यता वर्तमान की कठोरता को अपदस्थ करने की शक्ति देती है, अशोक वाजपेयी की कविताओं की एक बड़ी उपलब्धि हैं।' [81] कवि अशोक वाजपेयी जो जीवन का चित्रण करते हैं या जो जीवन उन्हें प्यारा है वह सम्पूर्ण जीवन है, जीवन का मात्र अंश नहों। उस जीवन में सबकुछ है और सबकुछ हो सकता हैं जैसे कि देह-गेह, जन्म-मरण, यौवन-जरा, आवेग-शैथिल्य, पृथ्वि और आकाश आदि। अत: अशोक वाजपेयी की दृष्टि में पूरा का पूरा जीवन है वे कविताओं में कविता द्वारा उस जीवन

को देखती है, सूँघते हैं स्पर्श करते हैं, कुल मिलाकर इन्हीं के माध्यम से एक नई दृष्टि का आविर्भाव करते हैं। इस प्रसंग में कृष्ण गोपाल वर्मा का कहना उचित ही है- 'आधुनिक कविता का एक निहायत अनोखा मुकाम है अशोक की काव्य-चेतना। इसमें जीवन का सम्पूणता है, देह के उज्वल विन्यास की उद्दाम वृत्तियाँ हैं तो गेह की छोटी-मोटी टेंशन जो किसी विचारात्मक दबाव में बल्कि एक विशिष्ट दृष्टिकोण के तहत चली आती हैं। घरेलू जीवन की रोजमर्रा में सब कुछ को ढाल देने की ठेठ हिन्दुस्तानी जिद है (रमेशचन्द्र शाह)। उनकी कविताओं में प्राय: किसी- न-किसी रूप में विरोधी तत्वों को साथ रखकर या अलग संधियों मे डाल दिया जाता है- देह-गेद, जन्म-मरण, यौवन-जरा, आवेग-शैथिल्य, अनुपस्थिति या अनुपस्थिति के बीच मनुष्य और देवता, जिजीविषाएँ और ईश्वर, पृथ्वी और आकाश शाब्दिक लीला में सन्यस्त रहते है। संक्षेप में पूरा का पूरा जीवन अशोक को दृष्टिगोचर होता है। उसे वे देखते हैं सूँघते है, स्वर्श करते हैं, भोगते हैं और उसमें विलीन होकर नई अंर्तदृष्टि से साक्षात्कार करते हैं—

**'पदाघात से**
**खिलता है अशोक का फूल**
**बिखरते है रंग**
**होती है सुबह**
**पृथ्वी मनाती है मोद**
**पदाघात से .. '**

एक ग्राफ सा बनता चलता है। देह, प्रेम, मृत्यु, ईश्वर और अनुपस्थिति इनके बीच कोटी इमारतों वस्तुओं क्रिया-व्यापारों से जुड़कर एपोरिया में बदल जाता है।[82]

कवि अशोक वाजपेयी की जो कविता-संसार है उसमें से एक बहुत बड़ा अंश मृत्य से सम्बन्ध है। मतलव 'मृत्यु' भी अशोक वाजपेयी की कविताओं का

एक मुख्य सरोकार है। मगर दिलचस्प बात यह है कि वहाँ भी मूलतः कवि को जीवन सें विराग नहीं अनुराग है। वे मृत्यु रूपी कठोर सच को स्वीकारते हुए भी दरअसल जीवन से प्यार करते हैं. उनकी मृत्यु संबंधी कविताओं में भी जिजीविषा बरकरार है, मृत्यु सम्बंधी कविताएँ भी जीवन से हताश भरा–पूरा बनाती हैं। यहां भी हम देख सकते हैं कि कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में जीवनासक्ति कितना प्रबल है। अन्त तक कुछ तो बच ही जाएगा ऐसी उम्मीद अशोक वाजपेयी को है. कुमार गंधर्व पर आधारित कवि अशोक वाजपेयी का एक काव्य संग्रह है 'बहुरि अकेला' जिसमें कवि कुमार गंधर्व की मृत्यु के बहाने मृत्यु संवेदनाओं से जुझते हुए भी आखिर ऐसा लगता है की मृत्यु नहों जीवन हावी हैं और कहीं न कहीं वे मृत्यु कि अपदस्थ करते हैं –

**'जो बचा है**
**उसी को जोड़ बाँध कर**
**अधजले ठुँठ अविन्यस्त शब्द**
**रागस्मृतियाँ दीवार पर कतार से चलती चींटियाँ**
**ताक पर धरे सन्दुक बरामदे में अकेला रह गया झूला**
**अब अनुपस्थिति की संज्ञा बन गया नाम**
**इन्हीं सब को एकत्र कर**
**हम फिर से गढ़ते हैं**
**एक संसार और**
**निराशा के कर्तव्य की तरह**
**उसे पुकारते है :**
**जीवन।'** [83]

## निष्कर्ष :

मूलत: जीवन के कवि और चिन्तक अशोक वाजपेयी की कविताओं में जीवन और कविता एकमेव हो जाता हुआ देखा जा सकता है। कविता और जीवन का अन्योन्याश्रित सम्बंध कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में शुरु से आखिर तक विद्यमान है। कवि अशोक वाजपेयी की कविता के केन्द्र में प्रथमत: और अन्तत: जीवन ही स्पन्दित होता है। असमाप्य जिजीविषा और गहरी जीवनासक्ति कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में अन्तर्धारा की तरह हमेशा व्याप्त है। यहाँ तक कि उनकी मृत्यु-सम्बंधी कविताओं में भी। उनकी कविताएँ अस्तित्व का वैकल्पिक रूप हैं। अर्थात कविता और जीवन दोनो विश्वसनीय है दोनों एक दूसरे को प्रेरित और परिष्कार करती है। कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं मे जो जीवन विन्यस्त है। वह अपने समय के घात-प्रतिघात संघर्ष, दु:ख, पीड़ा अर्थात तमाम मुशिकले और समस्याओं के बावजूद जीवन का उत्सव है। कवि अशोक वाजपेयी के काव्य और चिन्तन के मूल में विशुद्ध परिष्कृत मानवतावादी दृष्टिकोण रहा है जो शरीर मानव और उसके जीवन के गौरव अस्मिता उसके औचित्य तथा महत्व को स्वीकार और प्रतिष्ठापित करते है। जीवन के प्रति जो गहरी आसक्ति उनकी कविताओं में प्रबल रूप में व्याप्त है वह उनकी कविताओं को उम्मीद की कविता के रूप में एक अलग पहचान दिलाती है। अर्थात कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में जीवन है या उनकी कविताओं के आधारपर जो जीवन दृष्टि के रूप में उभरता है वह यह कि जीवन किसी बोझ या भार स्वरूप नही है बल्कि भरा पूरा जीवन है, खुशियों उम्मीदों अर्थात आसक्ति से पूर्ण जीवन। जाहिर है यह उनकी कविताओं की एक महत उपलब्धि है। क्योंकि दु:ख-पीड़ा और संघर्ष आदि भी जीवन का हिस्सा है इन सबके होते हुए जौ जीवन मिलता है उसे लेकर भी सन्तुष्ट रहना चाहिए और भरपूर जीवन जीता है। ऐसा स्वीकार करके ही सच्चे अर्थ में

जीवन में कुछ किया जा सकता है, अपने लिए और दूसरों क लिए भी। यदि सिर्फ दुखरा रोएँगे तो काम करने के लिए समय और साहस खत्म हो जाएगा। सचमुच मानव संस्कृति को कवि अशोक वाजपेयी का यह महान प्रदेय है। और यही उनकी कविताओं की खूबी है।

# जीवन और मृत्यु

जीवन और मृत्यु एक ही मुद्रा (पैसा) के इस तरफ उस तरफ है। इसको अलग-अलग करके न देखा जा सकता है और न ही एक को छोड़ कर दूसरे का कोई महत्व है। सिर्फ मनुष्य का ही नहीं इस पृथ्वि पर जो भी जनम लेता है पशु-पक्षी, जीव-जानवर, कीट-पतंग, पेड़ पौधे आदि सबके सब बारी-बारी से ही सही मृत्यु के चंगुल में फँसना ही हैं। अपने ड्राइवर 'सरनाम सिंह की मृत्यु पर' शीर्षक कविता में कवि अशोक वाजपेयी इस सत्य को उपस्थापन करते है। सरनाम सिंह की मृत्यु के बहाने यह याद दिलाते हैं कि — हम सभी जीना चाहते हैं मगर हम पर भी काल की छाया मंडरा रही है। जिस तरह तुम काल के जाल में फँस गये उसी तरह सबको फँसना है। हम सब भी अन्त की ओर खिसक रहे हैं —

**'हम सब लोग जीने और जीते रहने की अथक और बेशर्म कार्रवाई में लगे हुए**
**कभी-कभार तुम्हारी भलमनसाहत का जिक्र करते हुए तुम्हें याद करेंगे।**
**मृत्यु पता नहीं तुम्हारा क्या करेगी—**
**हम सब पर काल की छाया वैसे ही मँडरा रही है जैसे कि तुम पर,**
**हम सब भी जीवित हैं मरने तक जैसे कि तुम थे,**
**हम सब भी अन्त की ओर खिसक रहे हैं,'** [83]

कवि अशोक वाजपेयी फजल ताविश की मृत्यु पर 'क्या होता है' कविता में स्वीकारते हैं कि हम सबको बारी-बारी से ही सही जाना ही हैं। लेकिन कवि को आश्चर्य हैं आखिर जाना क्यों हैं —

**'फजल ताबिश दो दिन हो चुके तुम्हे गये :**
**पर क्या होता ऐसे जाना**
**कि लगे अभी कुछ वक्त है, पूछने का, कि**

**आखिर हम सबको बारी-बारी से सही**

**पर क्यों वहीं जाना है ?'** [84]

लेकिन जाना है, और सबको जाना हैं। अन्ततः कोई चोर दरवाजा नहीं है जिससे भागकर निकल जायेंगे। किसी भीड़-भाड़ स्टेशन से किसी रेलगाड़ी में बैठकर कहीं और भाग जायेंगे ताकि मृत्यु को पता न चले पकड़ न पाए। ऐसा कुछ भी संभव नहीं है। जहा भी जाओ, कहीं भी रहों, चाहे तुम दमकते रथ पर आरूढ़ राजपुरूष क्यों न हो। समय पर तुमको थमा दिया जाएगा गिरफतारी का परवाना। 'अन्ततः' शीर्षक कविता में कुछ ऐसा ही विचार व्यक्त करते हैं कवि अशोक वाजपेयी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'कहीं और भी**

**सुबह एक साफ-सुथरे लिफाफे में रखकर**

**थमा दिया जाएगा तुम्हें गिरफ्तारी का परवाना....**

**कहीं और भी**

**हो सकता है दमकते रथ पर आरूढ़ राजपुरुष तुम हो....**

**और तुम्हें चकाचौंध में सिर्फ झण्डियाँ भर दीख पड़े**

**बच्चियाँ नहीं,**

**पके अमरूद में पड़े कीड़े**

**तुम्हारी तश्तरी पर भी रेंगने लगं.........**

**चोरे दरवाजा कोई नहीं है**

**सब रास्ते जाते हैं —**

**जन्म से मृत्यु की ओर'** [85]

मृत्यु हमें जरुर दवोचेगा इसमें कोई सन्देह नहीं। कभी भी कोई इससे बच नहीं पायेंगे। तो जीवन के साथ मृत्यु का अन्यानाश्रित संबंध है। फिर भी आमतौर

पर देखा यह जाता है कि जीवन हमें अत्यन्त प्यारा हैं; हम जीना चाहते हैं। यहाँ तक कि एक कैंसर आक्रान्त या दुरारोग्य व्यक्ति भी अन्ततक अपनी लड़ाई जारी रखते हैं मृत्यु से जीने की। देखा जाता है कि मृत्यु से हम घबराते हैं, डरते हैं; दूर भागना चाहते हैं। हम जान-बुझकर उस आवाज उस पुकार को अनसुना कर देते हैं जो आवाज हम सबके कानों में गुंजती है चुप्पी के पार। वह पुकार मृत्यु की है, अवसान की है। मगर हम गौर नहीं करते हैं —

**'हम अपनी चुप्पी के पार**
**एक पुकार सुनते हैं**
**और अनसुनी करते हैं।**
**जो जाता है**
**थोड़ा-थोड़ा हमें भी ले जाता है।**
**और इसलिए कभी**
**पूरी तरह से नहीं जाता है।'** [86]

'बहुरि अकेला' की इन पंक्तियों में कवि अशोक वाजपेयी जो महत्व पूर्ण बात कही हैं वह है वह आवाज, जो हमारे कानों तक आती हैं चुप्पी के पार से। भागदौर की जिन्देगी में हम व्यस्त रहते है। उधर मृत्यु की वह आवाज बार-बार हमारे कानों से टकराते है, हम उस ओर ध्यान नहीं देते हैं। लेकिन अकेले और एकान्त में जब भी हम जरा ध्यान देत हैं, पलभर सोचते हैं तो हमें स्पष्ट सुनाई देते हैं, और हमें सुनना चाहिए। कई बार इस 'मृत्यु' शब्द का उच्चारण भी हम करना नहीं चाहते हैं, इसके बदले न जाने कितने पर्यायवाची शब्द निकाल लिये हैं। अर्थात जैसे-तैसे उसको हम भूलना चाहते ह। लेकिन कमबख्त मृत्यु हैं बड़ी जालिम जो हमें कहीं भी, कभी भी दबोच ही लेता हैं। और हमें इस तरह लेके जाएगा जैसे

सुबह–सुबह उँगली पकड़कर बच्चों को घुमाने ले जाते हैं। कवि अशोक वाजपेयी को ऐसा ही लगता है जो उन्होंने 'मृत्यु' शीषक कविता में कहते हैं —

**'फिर एकदिन धूप की तरह वह आएगी —**
**गरमाहट की तरह शरीर पर छा जाएगी,**
**एक बच्चे को उँगली पकड़कर ले जाते हैं**
**जैसे सुबह–सुबह घुमाने**
**वैसे अपने साथ ले जाएगी।'** [87]

मृत्यु एक चिरन्तन 'सच' हैं। जिससे छूटकारा न किसी को मिला हैं, और न हमें मिलेगा। भारतीय परंपरा में आत्मा, जीवन और मृत्यु जैसी अवधारणाओं पर विस्तार से विचार किया गया हैं। इन तीनों को एक दूसरे के साथ जोड़कर देखा गया हैं। अर्थात ऐसा माना गया हैं कि आत्मा, जीवन और मृत्यु का अन्त: सम्बंध हैं। हालाँकि सच्चाई यह भी है कि आत्मा जीवन और मृत्यु भारतीय परंपरा में चिन्तन के प्रमुख विषय के रूप में रहने के बावजूद हिन्दी साहित्य में मृत्यु संबंधी चर्चा उतनी नहीं हुई है। इस प्रसंग में कवि–आलोचक अशोक वाजपेयी का मानना हैं — 'अन्त की अवधारणा पर इधर विचार करते हुए मेरा ध्यान इस बात की ओर गया कि बावजूद पश्चिम के गहरे प्रभाव और सारी आधुनिकता के, बिसवीं शताब्दी के हिन्दी साहित्य में अन्त और नश्वरता का बोध बहुत बिरल हैं। यों जब–तब मृत्यु बोध का जिक्र हुआ है लेकिन अगर योंहि याद करने बैठे तो अन्त को लेकर लिखा बहुत कम याद आता है। प्रेमचन्द के 'गोदान' का अन्तिम दृश्य उन्हीं' की कहानी 'कफन' अज्ञेय के उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' में मृत्यु की छाया या उन्हीं के उपन्यास 'अपने अपने अजनबी' में मृत्यु की प्रतीक्षा आदि। कुछ कविताएँ निराला की, शमशेर बहादुर सिंह की, रघुवीर सहाय की कविता 'मरघट' आदि। पर कुल मिलाकर यह सब इतना कम है कि यह कहा जा सकता है कि अन्त और नश्वरता

हमारे साहित्य का शायद एक बुनियादी सरोकार नहीं रहा हैं। उदयपुर में वरिष्ट कवि नन्द चतुर्वेदी ने इस सिलसिले में हुई एक चर्चा में यह सुझाया कि अन्त के प्रति हमारे साहित्य की इस उदासीनता का एक कारण भारतीय दार्शनिक परम्परा हो सकती है जो अन्त की सच्चाई को स्वीकार नहीं करती। उसे मात्र एक रूपान्तरण भर मानती है और जीवन की सनातनता में विश्वास करती हैं। यह सम्भव है और इसका एक आशय यह हैं कि कई चरम प्रश्नों पर–और मृत्यु निश्चय ही एक चरम प्रश्न है हिन्दी की साहित्यिक मानसिकता अपनी परम्परा के उत्तराधिकार से अलग नहीं हटी है।' [88]

आम तौर पर मृत्यु को जीवन का निषेध माना जाता है। हो सकता है वैसे ही कुछ कारणों से हिन्दी साहित्य में इसे अधिकतर चर्चा में लाया नहीं गया है। एक तरह से इसे हाशिए पर धकेल दिया गया है। लेकिन कवि अशोक वाजपेयी इसे अपने साहित्य के केन्द्र में स्थान देते हैं। वे मानते हैं कि जीवन और मृत्यु आपस में पड़ोसी हैं। इसे हम नकार नहीं सकते। और जीने और मरने में उतनी दूरी नहीं है। कुमार गंधर्व की मृत्यु पर आधारित एक स्वतन्त्र कविता संग्रह 'बहुरि अकेला' के प्रसंग में कवि अशोक वाजपेयी कहते हैं 'एक तो दार्शनिक कारणों से हमारी परंपरा में मृत्यु को निषिद्ध किया गया हैं क्योंकि जीवनोल्लास, रसिकता, रति और इस तरह के तत्वों पर अधिक बल है, मृत्यु को थोड़ा हाशिए पर डाला गया है। दूसरे उनसे जूझने के लिए जिस तरह का कौशल चाहिए वह थोड़ा कठिन है क्योंकि मृत्यु के बारे में या तो बहुत ज्यादा भावुकता में फँस जायेंगे और या फिर कुछ बहुत बीभत्स रुप में जा सकते है। उसमें एक बहुत नाजुक संतुलन में देख पाना और जिसे आप कह रहे हैं पड़ोस, तो मझे लगता है हर चीज पड़ोस में है। जीवन के पड़ोस में मृत्यु है समय के पड़ोस में अनंत है। हमारे पड़ोस में दूसरे हैं। भाषा हमारे पड़ोस में है वगैह वगैरह यह जो पड़ोस है, हमारे आस पास का जो संसार है, उसमें

सब घट रहा हैं और किसी की नजर किसी पर है, किसी की किसी पर है। 'बहुरि अकेला' में मैं कितना सफल हुआ हूँ, यह पाठक जानेंगे। वैसे हम मृत्यु को इस तरह से भी देख सकते हैं कि जीने और मरने में इतनी दूरी नही हैं और दरअसल मरना पूरी तरह से मरना नहीं हैं जैसे कि पूरी तरह से जीवन भी बिना मरे एक तरह से संभव नहीं हैं।' [89] कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में नश्वरता और अनुपस्थिति का गहरा आग्रह हर-हमेशा दिखाई देता है जिस तरह से प्रम उनकी कविताओं का मूख्य सरोकार है उसी तरह से मृत्यु भी। कवि अशोक वाजपेयी को तो यहा तक मानना हैं, प्रेम और मृत्यु से किसी गहरे स्तर पर जुझे बिना कोई भी कवि बड़ा कवि हो ही नहीं सकता। इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं — 'अगर आप जीवनासक्ति के कवि है, या जीवनासक्ति आपका एक बुनियादी सरोकार है, तो नश्वरता भी आपका अनिवार्यतः बुनियादी सरोकार होगा। क्योंकि इस जीवनासक्ति में यह अन्तर्निहित है। विलकुल अनिवार्य पक्ष है। जिस तरह पिछले पचास वर्षो में रति की कविता कम लिखी गयी, उसी तरह मृत्यु की भी कविता बहुत कम लिखी गयी। प्रेम एंव मृत्यु, उपस्थिति एंव अनुपस्थिति का अनिवार्य द्वंद्व है। अगर आप देखे तो किसी और कवि ने प्रेम पर, मृत्यु पर इतनी कविताएँ नहीं लिखी हैं, जितनी मैंने, अगर विशुद्ध संख्या की बात करूँ गुणवत्ता तो आप देखें। प्रेम और मृत्यु उपस्थिति एंव अनुपस्थिति इनको जोड़ने वाली जो शक्ति है, मैं उसे देखता हूँ। एक तो द्वंद्व है, जो दोनों के बीच है, अर्थात दोनों के बीच एक गहरा अंतर्विरोध है जो दिखता नहीं हैं, क्योंकि दोनों एक ही आसक्ति के दो रूपक हैं, एक प्रेम है, दूसरा मृत्यु।' [90] ज्योतिष जोशी का भी मानना है हिन्दी में अकेले कवि अशोक वाजपेयी ने जितनी कविताएँ मृत्यु पर लिखि हैं उतनी किसी और कवि ने उन्हींके शब्दों में 'अकेले अशोक वाजपेयी नें हिन्दी में जितनी कविताएँ मृत्यु पर लिखि हैं, उतनी किसी और कवि ने नहीं। मृत्यु की भयावहता और उसके

पार जीवन के लोप तथा उससे जुड़ी स्मृतियों पर रचित कविताओं को ही विश्लेषित किया जाय तो इसमें हिन्दी कविता की एक उपलब्धि दिखाई देगी।' [91]

आधुनिक कवि अशोक वाजपेयी भारतीय साहित्य परंपरा से भलिभाति परिचित हैं। और शिद्दत के साथ यह भी जानते हैं कि 'मृत्यु' जीवन का एक अंश हैं एक हिस्सा है। जीवन के साथ-साथ मृत्यु भी समझने का विषय है। और मरण का धर्म जीवन का स्त्रोत है। मृत्यु से दूर भागना नहीं उसके पास जाकर समझा जाए, महसूस किया जाए। क्योंकि इसको समझे बिना हम जीवन को पूरी तरह से या जीवन को सम्पूर्णता से समझा ही नहीं जा सकता है। कवि अशोक वाजपेयी अपने कवि जीवन के शुरूआती दौर से ही इस विषय को अर्थात मृत्यु को एक थीम के रूप में, एक सरोकार के रूप में मजबूती से पकड़ते है और अपनी कविता में जगह देते है। मतलब मृत्यु अशोक वाजपेयी की कविताओं का ऐक प्रमुख संवेदना रही है। यों कहा जा सकता है उनकी कविताओं का मुख्य सरोकार ही है जीवन, प्रेम और मृत्यु। इन तीनों के एक के साथ दुसेर का सम्बंध है। सबसे महत्व पूर्ण बात यह हैं कि कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में प्रेम और मृत्यु जैसे विरोधी जीवन मृत्यों को एकसाथ देखा जा सकता है, अनुभव किया सकता है। उन्हें जीवन भी बहुत प्यारा है, उतना ही पम करना और ठीक उतना मृत्यु संवेदना भी उन्हें आकृष्ट करता है। इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य में कवि अशोक वाजपेयी एक दुर्लभ कवि है। उनकी कविताओं में जीवन और मृत्यु अन्त: सम्बंध तथा अन्त : संधर्ष की अनेक छबियाँ देखने को मिलता जो समसामयिक काव्य-दृश्य पर बहुत ही कम नजर आता है। इस प्रसंग अरविन्द त्रिपाठी का कथन काफी मिलता-जुलता है उनका कहना हैं — 'समकालीन काव्य परिदृश्य पर गौर किया जाय तो अशोक वाजपेयी एक महत्वपूर्ण और दुर्लभ कवि इस मायने में हैं: क्योंकि उन्होंने अपनी कविता के लिए हमेशा एक नई जमीन, भले ही वह जमीन का एक छोटा टुकड़ा ही

क्यों न हों, की खोज जारी रखी है। ध्यान दिया जाय तो उनकी कविता के मुख्य सरोकार है — जीवन, प्रेम और मृत्यु। शायद ये तीन विषय ही मुख्य रूप से उनके काव्य संसार और काव्य यात्रा में शामिल है। अब तक लिखी उनकी कविताओं का हिसाब लगाया जाय तो सौ से ऊपर कविताएँ प्रेम, जीवन और मृत्यु पर अलग-अलग लिखी गई है, जिनको पढ़ते हुए आप प्रेम और मृत्यु जैसे विरोधी जीवन सत्यों को एक साथ अनुभव कर सकते है। उनको कविताओं को पढ़ते हुए आप पाएँगे कि जितना प्रिय उन्हें प्रेम करना लगता है, उतना ही प्रिय मृत्युका वरणकरना भी। यानी उनकी कविता के लिए एक छोर पर प्रेम है तो दूसरे छोर पर मृत्यु है।'[92]

वे जीवन और मृत्यु को अपनी कविताओं कई बार आलोचनाओं में भी तरह-तरह की नजर से देखते हैं। जीवन और मृत्यु पर जितनी तरह से कवि अशोक वाजपेयी सोते हैं विचार करते हैं, प्राय : उतनी तरह से उनके समकालीन अथवा अरसे से किसी अन्य कवि ने नहीं। इसके भी कई कारण हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है अक्सर हम मृत्यु से डरते है उसको याद करना नहीं चाहते हैं। फिर हम सामाजिक समय से इतना आक्रान्त हो गये हैं कि हम यह लगभग भूल सा गये मृत्यु भी समय का एक पक्ष हैं, जीवन का एक हिस्सा है। मृत्यु से जूझना उससे दो-चार होना दरअसल जीवन से ही जूझना है। कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविता संचयन 'जो नहीं हैं' की भूमिका में कहते हैं — 'इस शताब्दों ने हमें सामाजिक समय से इतना आक्रान्त किया है कि हम यह भूल सा गये हैं कि मृत्यु भी समय का पक्ष है। उससे कविता में जझना समय से ही जूझना है। उससे दो-चार होना मनुष्य की नियति से दो-चार होना है। यह समय के 'कालातीत' आयाम से संयुक्त होना है। वह कविता के एक अत्यन्त प्राचीन समाज में शामिल होना है। वह अपने निजी अन्त को दयनीय बनाने के बजाय उसे अर्थ और गरिमा देने का जतन करना है।'[93]

कवि अशोक वाजपेयी नियति और मृत्यु से बार बार मुखातिब होते हैं। मृत्यु या अनुपस्थिति उनकी कविता और साहित्य में शुरू से ही एक बुनियादी सरोकार के रुप में रहें हैं। 'मृत्यु' को लेकर के तरह-तरह की दृष्टि से वे सोचते हैं। उल्लेखनीय बात यह भी हैं कि 'मृत्यु' को लेकर वे अशोक वाजपेयी किसी भी एक धर्ममत या वाद से जुड़ा नहीं है। मृत्यु और जीवन का जो अन्तः सम्बंध है उसको कवि कई दृष्टि से देखते है, जाँचते है, परखते है और न जाने कितने सवाल भी करते हैं साथ-साथ स्वंय उन सबका जवाब भी ढूढ़ँते है। इस पृथ्वि पर एकमात्र और चरम सत्य है मृत्यु, जीवन का ही एक अनिवार्य चरण। मृत्यु ही जीवन को पूर्णता दिलाता है। जय-पराजय, दुख और सुख से बना जीवन जिसे हम जीते हैं और जिसे हम जीवन कहते हैं वह जीवन तभी पूर्णता प्राप्त करता है जब मृत्यु उसे लील लेता है फिर कोई भी जिज्ञासा बचा नहीं रह जाता हैं। 'बहुरि अकेला' की पंक्तियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं —

**'पत्तियों सीढ़ियों शब्दों दुःखों घावों के शिल्प से**
**जो रचा जाता ह सरल सा दीखता जीवन**
**मृत्यु उसे पूर्ण कर देती है और**
**जिज्ञासा के बाहर।'** [94]

मृत्यु को लेकर दुःखी होना या परेशान होना नहीं है। जीवन का दो-दो अध्याय होता हैं, जिसे हम अक्सर इहलोक-परलोक शब्द से परिभाषित करते है। मृत्यु वह प्रवेशद्वार है जिससे हम परलोक अर्थात जीवन के दूसरे अध्याय में प्रवेश करते हैं। जीवन और मृत्यु शाश्वत सत्य है किसी भी हालत में इसे नकारा नहीं जा सकता हैं, भारतीय परंपरा में भी सत्य को बहुत महत्व दिया गया है। आधुनिक कवि अशोक वाजपेयी इस परम सत्य से अच्छी तरह परिचित हैं और वे इससे दुखी या परेशान न होकर बल्कि इसमें ध्वँसे-बिंधे इस चरम सत्य यानी मृत्यु को शिव

और सुन्दर बनाने का प्रयास करते हैं। कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि 'मृत्यु जीवन की क्रियायों को तीव्र करने वाली है। मृत्युबोध जीवन में निराशा नहीं लाता हैं। कवि अशोक वाजपेयी मृत्यु और जीवन जैसे सत्य को सामाजिक सन्दर्भ में भी जुड़कर देखना चाहते हैं। साथ ही वे यह भी मानते हैं कि ऐसा करके ही मृत्यु सत्य, शिव और सुन्दर हो सकता है। स्वंय कवि इस प्रसंग में जो कहते हैं यहाँ उल्लेख किया जा सकता — 'शायद मैं स्वीकार का कवि हूँ, अस्वीकार का नहीं। निषेध, फिर वह मृत्यु का ही क्यों न हो, मुझे मंजूर नहीं। यह तो मैं नहीं जानता कि मैंने मृत्यु का सुन्दरीकर किया है या नहीं; लेकिन मृत्यु को लेकर किसी तरह की रुग्णता या आतंक का भाव कम से कम मुझ में नहीं है। असल में मृत्युवाली कविताएँ मेरी जीवनासक्ति की एक विलोम रूपक द्वारा अभिव्यक्ति है मुझे लगता है कि बुनियादी चीज मरना नहीं, जीना है और चुँकि मरना है तो मरते हुए भी जीते रहना है। इसे ही शायद अनन्त आदि के नजरिये से व्यक्त किया गया है।' [95] ऐसा भी नहीं है कि कवि अशोक वाजपेयी को 'मृत्यु' से बहुत प्यार है। जितनी जल्दी मृत्यु उसे ग्रास करेगा उतनी ही उनको खुशी होगी। कवि अशोक वाजपेयी को अच्छी तरह मालूम है 'मृत्यु' आखिर मृत्यु ही है। मृत्यु कितना भी बड़ा हो आखिर वह हारना ही है। लेकिन वह होगी, उससे मुह मोड़के या दूर रहकर हम बच नहीं पायेंगे। तो उससे भला यह कि उस सत्य को, तत्थ की सहर्ष स्वीकारा जाय, समझा जाय। इस बहाने थोड़ा-बहुत तैयारी भी हो जाता है। मृत्यु से जो भय हैं कहीं न कहीं थोड़ा-बहुत कम हो सकता है। कवि अशोक वाजपेयी का मानना हैं कि नश्वरता अर्थात् 'मृत्यु' मनुष्य का एक चिरन्तन प्रश्न है। तो इस प्रश्न के साथ जुझना भी कविता का एक अन्तहीन संघर्ष है इसके साथ-साथ उसे स्वीकारना भी। हम मरना नहीं जीना चाहते हैं और इसलिए कविता लिखते हैं। कवि अशोक वाजपेयी कहते हैं — 'नश्वरता मनुष्य का एक

चिरन्तन प्रश्न है। कविता उस नश्वरता के विरुद्ध एक असमाप्य संघर्ष है और उसकी अनिवार्यता का सहज स्वीकार भी। हम कविता लिखते हैं क्योंकि हम जीना चाहते हैं मरना नहीं। अन्तर्विरोध यह है कि हर कविता एक तरह का अवसान है। वह जीने के साथ ही मरने को भी खुली आँखों देखना पचानना है। असल में वही जीता है जो मरते हुए जीता है; कविता एक तरह से मरते हए जीना है; बीतते हुए खिलना है। वह जीवन नहीं अति जीवन है। [96] कुछ ऐसा ही कहना हैं 'बहुरि अकेला' काव्य-संग्रह की इन पंक्तियों में कवि अशोक वाजपेयी का —

**'कितना भी बड़ा हो मरना वह हारना है।**
**हर बार**
**जैसे तैसे टुइँयाँ-जैसे भी जीने से।**
**जीना अनेक तुच्छताओं में जीना है।**
**जीते हुए हम लगातार पिण्ड छुड़ाते चलते हैं**
**उनसे जो मर जाते हैं।'** [97]

इस प्रसंग में मदन सोनी का कथन उल्लेखनीय है वे भी मानते है कि अशोक वाजपेयी की कविता में मृत्यु के प्रति एक स्पृहनीयता का भाव हैं, आत्मीय-सा संबंध है। फिर अशोक वाजपेयी की कविता में मृत्यु अक्सर सौन्दर्यात्मक बिम्बों में ढलकर आती है। उनका कथन उद्धृत किया जा रहा हैं — 'आपकी (अशोक वाजपेयी की) कविता म इसके विपरीत मृत्यु के प्रति एक स्पृहनीयता का भाव है। आपकी कविताओं में जो कवि-चेतना है उसका बहुत निजी और आत्मीय-सा संबंध है मृत्यु के प्रति। वह कोई बहुत बड़ी या दुर्दान्त उपस्थिति नहीं, बल्कि एक तरह के निजी बिम्बों में वह प्रकट होती हैं। हम चाहें तो इसे मृत्यु के अनुभव का निजीकरण और एक आत्मीय उपस्थिति में रूपान्तरण जैसा कुछ कह सकते हैं। इससे अधिक मैं यह भी कहूँगा कि आपकी कविता में मृत्यु अक्सर सौन्दर्यात्मक

बिम्बों में ढलकर आती है और हम कह सकते हैं कि आपने अपनी कविताओं में मृत्यु का सुन्दरीकरण किया हैं।' [98] ऊपर्युक्त कथन में मदन सोनीजी कवि अशोक वाजपेयी की मृत्यु सम्बंधी कविताओं की सराहना करते हूए भी कि आपने मृत्यु का सुन्दरीकरण किया है। साथ ही उन्होंने आक्षेप भी करते ह कि कवि अशोक वाजपेयी की इन सब कविताओं में जो कवि चेतना है सामाजिक नहीं है या बहुत बड़ी या दुर्दान्त उपस्थिति वहा नहीं है। इसके विपरीत इन कविताओं कवि मृत्यु के अनुभव का निजीकरण और एक आत्मीय उपस्थिति का रूपान्तरण जैसा कुछ करते है। इस तरह का आक्षेप या आलोचना कवि अशोक वाजपेयी की मृत्यु संबधी कविताओं लेकर कई लोगों का भी रहा हैं। जैसा कि कुछ लोगों का मानना हैं कवि अशोक वाजपेयी कविताओं में चर्चित मृत्यु सामाजिक मृत्यु नहीं है अर्थात मृत्यु का सामाजिकीकरण उन्होंने नहीं किया है। जादातर कविताएँ आत्मीयों को लेकर ही हैं आदि। कवि अशोक वाजपेयी इस बात से तो सहमत है कि उन्होंने अधिकतर कविताएँ अपने आत्मीयों को लेकर ही लिखे है वे सभी निजी मृत्यु का घटनाए है। लेकिन वे इस आरोप से असहमत हैं कि उशमें सामाजिकता या सार्वजनीनता का अभाव है। उनका मानना है कि एक तो हमारे समय और समाज में सार्वजनिक मृत्यु पर तो चर्चा होतो है मगर निजी मृत्यु अनदेखा रह जाता है जब कि यही हमारे लिए अधिक मर्मान्तिक होती है। फिर यही निजी मृत्यु की घटनाओं में जो मृत्यु-संवेदना का इजहार होता है उसी में सार्वजनीनता या सामाजिकता अन्त:सलिल होता या इसी में पूरी स्थिति पर टिप्पणी हो जाता है। इस प्रसंग में कवि अशोक वाजपेयी जो कहते उद्धृत किया जा रहा है — ' मैंने सार्वजनिक मृत्यु पर नहीं लिखा यह सही है। हम एक ऐसे समय और समाज में रह रहे हैं जिसमें सार्वजनिक मृत्यु और उसके पीछे सक्रिय शक्तियाँ तो देखी जाती हैं लेकिन निजी अवसान को अनदेखा किया जाता है रहा है। जबकि सच तो यह है कि निजी मृत्यु ही अक्सर हमारे लिए

अधिक मर्मान्तक होती है। मैंने चाहे अपनी माँ, पिता, कुमार गंधर्व, फजल ताविश, अपने ड्राइवर सरनाम सिंह पर जो कविताएँ लिखी हैं वे सभी निजी मृत्यु की घटनाएँ है लेकिन मेरी नजर में उनमें से हरेक कविता मर्म के अलवा और निजी क्षति के इजहार के साथ साथ पूरी स्थिति पर एक टिप्पणी भी है। कुमार गन्धर्व के लिए विदागीत के रूप में लिखा गया इक्कीस कविताओं का समुच्चय 'बहुरि अकेला' हिन्दी का शायद सबसे लम्बा शोक गीत है। उसे किसी और कारण से अस्वीकार किया जाए यह समझ में आता है पर उसके फलक की सामाजिक और कास्मिक विशालता से कोई कैसे इनकार कर सकता है। वैसे मनुष्य और संसार की नश्वरता और अनश्वरता का स्वप्न मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण अभिप्राय रहे हैं।[99]

## निष्कर्ष :

मृत्यु – कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में एक सशक्त कविता सरोकार के रुप में सदा विद्यमान रहा है । मूलत: जीवन के कवि और चिन्तक अशोक वाजपेयी की कविताओं में जीवन और कविता एकमेव हो जाता हुआ देखा जा सकता है। कविता और जीवन का अन्योन्याश्रित सम्बंध कवि अशोक वाजपेयी की कविता के केन्द्र में प्रथमत : और अन्तत : जीवन ही स्पान्दित होता है। असमाप्य जिजीविषा और गहरी जीवनासक्ति कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में अन्त: धारा की तरह हमेशा व्याप्त है। यहाँ तक कि उनकी मृत्यु–सम्बंधी कविताओं में भी। उनको कविताएँ अस्तित्व का वैकल्पिक रूप हैं। अर्थात कविता और जीवन दोनों विश्वसनीय है दोनों एक दूसरे को प्रेरित और परिष्कार करती हैं। कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में जो जीवन विन्यस्त है वह अपने समय के घात–प्रतिघात संघर्ष, दू:ख, पीड़ा अर्थात तमाम मुश्किले और समस्याओं के बावजूद जीवन का उत्सव है। कवि अशोक वाजपेयी के काव्य और चिन्तन के मूल में

विशुद्ध परिष्कृत मानवतावादी दृष्टिकोण रहा है जो शरीर मानव और उसके जीवन के गौरव, अस्मिता उसके औचित्य तथा महत्व को स्वीकार और प्रतिष्ठापित करते हैं। यह हाल उनके मृत्यु संबंधी कविताओं में भी बरकरार है । जीवन का एक अंश, एक पड़ाव मृत्यु संबंधित कवि अशोक वाजपेयी की कविताएँ साधारणत मृत्यु के प्रति जो नकारात्मक भाव और विचार समाज में है, उसे कहीं न कहीं सकारात्मक दृष्टि में तब्दील करते हैं । जाहिर है यह उनकी कविताओं की एक महत उपलब्धि है। सचमुच मानव संस्कृति को कवि अशोक वाजपेयी का यह महान प्रदेय है। और यही उनकी कविताओं की खूबी है।

## सन्दर्भ :

1. कोलॉज - सम्पादक : पुरुषोत्तम अग्रवाल, 2012 पृ. 79

2. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ - सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 11

3. तिनका-तिनका भाग-1 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 60,61

4. तिनका-तिनका भाग- 1 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 319

5. मेरे साक्षात्कार अशोक वाजपेयी - सम्पादक : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 41

6. पूर्ववत् - पृ. 19

7. यहाँ से वहाँ - अशोक वाजपेयी, 2011 पृ. 159

8. पूर्ववत् - पृ. 32

9. तिनका-तिनका भाग- 1 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 363,364

10. आज की कविता - विनय विश्वास, 2009 पृ. 13

11. इबारत से गिरि मात्राएँ - अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 83

12. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 56

13. तिनका-तिनका भाग- 1 - अशोक वाजपेयी-भूमिका

14. तिनका-तिनका भाग- 2 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 20

15. मेरे साक्षात्कार, अशोक वाजपेयी - सम्पादक:अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 147

16. कविता और समय - अरुण कमल, पृ. 235

17. विवक्षा - अशोक वाजपेयी, 2006 पृ. 197

18. दुख चिट्ठीरसा है - अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 29

19. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 13

20. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज - अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 30

21. तिनका-तिनका भाग- 1 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 171

22. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज - अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 255

23. तिनका-तिनका भाग- 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 116

24. यहाँ से वहाँ - अशोक वाजपेयी, 2011 पृ. 23

25. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 89

26. समय के पास समय, अशोक वाजपेयी,2000 पृ. 42

27. इबारत से गिरि मात्राएँ - अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 60

28. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ - सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 178

29. तिनका-तिनका भाग- 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 89

30. तिनका-तिनका भाग- 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 206

31. समय के पास समय, अशोक वाजपेयी,2000 पृ. 56

32. मेरे साक्षात्कार, अशोक वाजपेयी सम्पा : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 19

33. पूर्ववत्-भूमिका

34. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 60

35. कविता और समय, अरुण कमल, पृ. 200

36. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 19

37. पूर्ववत्-भूमिका

38. दुख चिट्ठीरसा है - अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 56

39. पावभर जीरे में ब्र्म्हभोज - अशोक वाजपेयी, 2003, पृ. 38

40. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 30

41. पूर्ववत् - पृ. 57

42. कोलॉज, सम्पा: पुरुषोत्तम अग्रवाल पृ. 9

43. तिनका-तिनका भाग- 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 311

44. कोलॉज - सम्पादक : पुरुषोत्तम अग्रवाल पृ. 95

45. मेरे साक्षात्कार, अशोक वाजपेयी सम्पा : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 62

46. पूर्ववत् – पृ. 68

47. तिनका–तिनका भाग– 2 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 320

48. दुख चिट्ठीरसा है – अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 60

49. मेरे साक्षात्कार, अशोक वाजपेयी सम्पा : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 20

50. पूर्ववत् – पृ. 40

51. तत्पुरुष – अशोक वाजपेयी, भूमिका

52. विवक्षा – अशोक वाजपेयी, 2006 पृ. 13

53.मेरे साक्षात्कार अशोक वाजपेयी – सम्पादक : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 48

54. तिनका–तिनका भाग– 2 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 362

55. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ – सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 343

56. पूर्ववत् – पृ. 369,70

57. समय के पास समय – अशोक वाजपेयी,2000 पृ. 48

58. उप्रेक्षा – मदन सोनी, 2007 पृ. 82

59. पूर्ववत् – पृ. 86

60. पूर्ववत् – पृ. 86

61. कवि कह गया है – अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 5

62. तिनका–तिनका भाग– 2 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 243

63. पूर्ववत् – पृ. 90

64. मेर साक्षात्कार अशोक वाजपेयी –सम्पादक :अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 116

65. इबारत से गिरि मात्राएँ – अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 85

66. दुख चिट्ठीरसा है – अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 58,59

67. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज – अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 267

68. तिनका–तिनका भाग– 1 - अशोक वाजपेयी, 1996–भूमिका

69. पूर्ववत्–भूमिका

70.कुछ रफु कुछ थिगड़े, अशोक वाजपेयी, 2004 पृ. 12

71. आधुनिक हिन्दी कविता का विकास,रामेश्वर खण्डेलवाल 'तरूण'1998पृ. 112

72. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 प. 156

73. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 259

74. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 268

75. पूर्ववत् – पृ. 165

76. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 334

77. कुछ रफु कुछ थिगड़े, अशोक वाजपेयो, 2004 पृ. 44

78.पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 280,281

79. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 335

80. आलोचना की छबियाँ, ज्योतिष जोशी, 1996 पृ. 43

81. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ– सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 154,155

82. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 188

83. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 85 64

84. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 361

85. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 307

86. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 175

87. पूर्ववत् – पृ. 44

88. यहाँ से वहाँ – अशोक वाजपेयी, 2011 पृ. 42,43

89. मेरे साक्षात्कार अशोक वाजपेयी – सम्पादक : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 74

90. पूर्ववत् – पृ. 123

91. आलोचना की छबियाँ – ज्योतिष जोशी, 1996 पृ. 51,52

92. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ – सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 338,339

93. जो नहीं है – अशोक वाजपेयी–भूमिका

94. बहुरि अकेला – अशोक वाजपेयी, 1992 पृ. 3

95. मेरे साक्षात्कार अशोक वाजपेयी – सम्पादक : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 155

96. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज – अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 58

97. तिनका–तिनका भाग– 2 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 165

98. मेरे साक्षात्कार अशोक वाजपेयी – सम्पादक : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 154

99. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज – अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 137